



श्री मत्परमहंस परिव्राजकाचार्य

श्री स्वामी आत्मानन्द तीर्थ

आचार्य

आर्ष योग विद्यापीठ, आनन्द निकेतन



ओ३म्

प्रस्तावना

योग दर्शन सैद्धान्तिक विवेचना पूर्ण दर्शन होने के साथ-साथ क्रियात्मक वैज्ञानिक दर्शन है। कतिपय महत्वपूर्ण विषयों को जिन्हें जानना अत्यावश्यक है, मैंने योग दर्शन की इस "सुप्रभा" नामक टीका की प्रस्तावना में प्रस्तुत किया है।

योग द्वारा मनुष्य स्वस्थ रहकर शान्त मन से युक्त हो दैविक आनन्द को प्राप्त कर लेता है।

सृष्टि के आरम्भ में "साध्य" तथा "ऋषि" उत्पन्न हुये। ऋषि गण आरम्भ से ही समाधिस्थ हो गये। इस प्रकार सृष्टि के आरम्भ के साथ साथ योग का भी आरम्भ हो गया।

"युज् समाधौ" तथा "युज् संयमने" इन दोनों धातुओं से योग शब्द सिद्ध होता है। "युज् समाधौ" से योग शब्द का अर्थ समाधि है। "युज् संयमने" से योग शब्द का अर्थ इन्द्रियों तथा चित्त का संयमन है।

समाधि अवस्था में ही ऋषियों के अन्तःकरण में वेदाविर्भाव हुआ। ऋषियों ने मंत्रों के साक्षात्कार के साथ साथ सस्वर मन्त्र सुने। उन पवित्रात्मा ऋषियों में से श्रेष्ठता की दृष्टि से ऋग्वेद वेत्ता की अग्नि संज्ञा हुई। यजुर्वेद वेत्ता की वायु संज्ञा हुई। सामवेद वेत्ता की आदित्य संज्ञा हुई, तथा अथर्ववेद वेत्ता की अङ्गिरा संज्ञा हुई। स्वायंभुव मन्वन्तर में, अग्नि,

॥ ओ३म् ॥

योग दर्शनम्

श्री मत् पतञ्जलि मुनि प्रणीतम्

"सुप्रभा" टीका समन्विताः

श्रीमत्भगवत्पूज्यपाद श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य

श्रीमत् आत्मानन्द तीर्थ स्वामिना

विरचिता "सुप्रभा" नाम्नी टीका सुभूषिताः
मुनिवर पतञ्जलि प्रणीत योग दर्शनम्।

प्रकाशक :

आर्ष योग विद्यापीठ, धर्म संस्थान
खरखौदा, मेरठ, उत्तर प्रदेश।

प्रथम संस्करणम्
रविवार, चैत्र शुक्ल प्रतिपदा, २०४८ विक्रमी। (1991 ई०)
प्रविष्टे ४ चैत्र, २०४७ विक्रमी। (1990 ई०)

सजिल्द मूल्य—२५/-
अजिल्द मूल्य—१५/-

कृपया मूल्य देकर ही पुस्तक लें।

वायु, आदित्य तथा अङ्गिरा योग के आद्य आचार्य थे। स्वायंभुव मन्वन्तर में योग के दूसरे आचार्य ब्रह्मा थे। योग के तृतीय आचार्य **हिरण्यगर्भ** थे।

प्रत्येक मन्वन्तर के पश्चात् अवान्तर प्रलय होने के कारण प्रत्येक मन्वन्तर के आरम्भ में आचार्यों द्वारा योग का उपदेश होता रहा है। वर्तमान सातवें वैवस्वत नामक मन्वन्तर में योग के उपदेष्टा एवम् आद्य आचार्य **विवस्वान** थे। **वैवस्वत मनु** योग के दूसरे आचार्य थे। पाँच हजार दो सौ वर्ष पूर्व **"पतञ्जलि मुनि"** योग के आचार्य हुये। **"मुनि श्रेष्ठ पतञ्जलि"** ने **"योग दर्शन"** नामक ग्रन्थ की रचना की। योग दर्शन पर मुनिवर व्यास ने भाष्य किया। एक हजार पाँच सौ सैंतालिस वर्ष पूर्व राजर्षि भोज ने योग दर्शन पर **"भोज वृत्ति"** नामक टीका लिखी। विज्ञान भिक्षु ने योग दर्शन पर **योग वार्तिक** लिखा। आचार्य वाचस्पति मिश्र ने योग दर्शन पर टीका लिखी। पाँच हजार एक सौ चालीस वर्ष पूर्व मुनिवर जैमिनि के शिष्य **याज्ञवल्क्य** योगाचार्य हुये।

योग दर्शन पर सभी उपर्युक्त भाष्यकारों के भाष्य पारस्परिक भिन्नताओं से युक्त हैं। मुनिवर व्यास तथा राजर्षि भोज अनुभव सिद्ध योगी थे। राजर्षि भोज ने भोज वृत्ति में रेचक पूरक तथा कुम्भक आदि शब्दों का प्रयोग किया है जो नव्य योग प्रणाली में प्रचलित हैं। योग दर्शन के आधुनिक टीकाकारों की टीकायें मुनिवर पतञ्जलि के मत से सर्वथा भिन्न हैं। मुनिवर पतञ्जलि के योग दर्शन को उनके योग दर्शन के द्वारा ही भली भाँति हृदयङ्गम किया जा सकता है।

सृष्टि के आरम्भ में समाधि अवस्था में ही वेदाविर्भाव हुआ। अनेक ऋषियों ने समाधिस्थ होकर मन्त्रार्थ जाने तथा उनका प्रकाश किया। वेदों की विद्यमान शाखायें वैवस्वत मन्वन्तर की रचनायें हैं। मन्त्रों के ऋषि भी वैवस्वत मन्वन्तर के ही हैं।

योग साधन के आधार तप स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान हैं। विवेक वैराग्य तथा अभ्यास योगाभ्यास की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

पाँच हजार दो सौ वर्ष पूर्व वेदों की शाखाओं के आविर्भाव ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रणयन तथा उपनिषदों की रचना से विभिन्न योग मार्गों का उदय हुआ। कालान्तर में विभिन्न सम्प्रदायों की उत्पत्ति के साथ साथ विभिन्न सम्प्रदायों के योगोपनिषदों का आविर्भाव हुआ।

मुण्डक उपनिषद्कार ने ओ३म् शब्द के उच्चारण के माध्यम से ध्यान का मार्ग प्रस्तुत किया।

प्रणवो धनुः शरोह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्॥

मुण्डक २। खण्ड २। मन्त्र ४॥

ओ३म् शब्द का उच्चारण धनुष के खींचने के समान, तन्मयता पूर्वक, प्रमाद रहित हो, ब्रह्म को लक्ष्य मानकर आत्मनिष्ठ होकर करे। इस प्रकार ओ३म् शब्द के उच्चारण पूर्वक परमेश्वर का ध्यान करे।

प्राणान् प्रपीडयेह संयुक्त चेष्टः
क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्वसीत ।
ततो दुष्टाश्व युक्तमिव वाहमेनम्
विद्वान्मनो धारयेताप्रमतः ।

श्वेताश्वतरोपनिषद्, अध्याय २, मन्त्र ९ ॥

श्वास प्रश्वास द्वारा प्राणों को पीड़ित करते हुये, प्राणों के क्षीण होने पर नासाछिद्रों से प्राणों को बाहर निकाल दें। इस प्रकार विद्वान् प्रमाद रहित होकर, दुष्ट अश्वों के तुल्य इन्द्रियों तथा मन को अधिकार में करे। ये उपनिषद् प्रोक्त मार्ग हैं।

मन्त्र जप करना, ओ३म शब्द के उच्चारण पूर्वक ध्यान करना आदि **शब्द ब्रह्म** की उपासना है। प्राणायाम के अनवरत अभ्यास से उत्पन्न हुई चित्त की प्रगाढ़ एकाग्रावस्था में ध्यान करते समय शरीरस्थ नाड़ियों के अनवरत कम्पन से उत्पन्न ध्वनि सुनाई देने लगती है। यही **अनाहत नाद** है। यह ध्वनि विभिन्न प्रकार की होती है। ध्यानावस्थित होकर इस ध्वनि को सुनना **शब्द ब्रह्म** की उपासना है। अनाहत नाद श्रवण पूर्वक ध्यान करने के आधार पर अनेक सम्प्रदायों की स्थापना हुई। अनाहत नाद को अनहद नाद नाम से भी जाना जाता है।

प्राणायाम के अनवरत अभ्यास से प्राणोत्थान होने पर समाधिस्थ होना **प्राणोपासना** है। प्राणोपासना द्वारा समाधिस्थ होकर ब्रह्म की उपासना करना किसी किसी बिरले भाग्यशाली योगी को सिद्ध होता है। चित्त की एकाग्रता **धारणा** है। धारणा के समय चित्त की प्रगाढ़ एकाग्रता **ध्यान** है। ध्यानावस्था में चित्त आन्तरिक प्रकाश से आपूरित रहता

है। अनेक सम्प्रदायों का जन्म प्रकाश का ध्यान करने के आधार पर हुआ है।

परमात्मा की **श्रवण शक्ति** से **वायु** तथा **प्राण** की उत्पत्ति हुई है। वायु स्थूल तथा प्राण सूक्ष्म है।

शरीर में अनेक नाड़ियाँ हैं। जिनके इड़ा पिङ्गला तथा सुषुम्ना आदिक विभिन्न **कल्पित** नाम हैं। विद्युत प्रकाशमय, गतिशील तथा सूक्ष्म है। वृत्तमयी होने के कारण विद्युत की "**सूक्ष्म कुण्डलिनी शक्ति**" कल्पित संज्ञा है। प्राण भी वृत्ताकार रूप से गतिशील है। इसलिये प्राण को "**स्थूल कुण्डलिनी शक्ति**" कल्पित संज्ञा है। विद्युत तथा प्राण समस्त शरीर में व्यापक हैं। बाह्यवृत्ति प्राणायाम के अनवरत अभ्यास से प्राणों पर अधिकार कर **पूर्व मार्ग** अथवा बङ्कनाल मार्ग से प्राणोत्थान करना प्राणरूपी "**स्थूल कुण्डलिनी शक्ति**" का जागरण है।

आभ्यन्तर वृत्ति प्राणायाम के अनवरत अभ्यास से मेरु-दण्डस्थ मार्ग अर्थात् **पश्चिम मार्ग** से प्राणोत्थान पूर्वक ध्याना-वस्था में अभूतपूर्व प्रकाश का दर्शन विद्युत शक्ति का साक्षा-त्कार अर्थात् "**सूक्ष्म कुण्डलिनी शक्ति**" का साक्षात्कार है। यही कुण्डलिनी जागरण है। इसके लिये नव्य योग के ग्रन्थकारों ने विभिन्न मुद्राओं की आयोजनायें की हैं। प्राण शक्ति अर्थात् स्थूल कुण्डलिनी शक्ति के साक्षात्कार के समय योगी **रजत वर्ण** के अलौकिक दिव्य प्रभामण्डल के दर्शन करता है। विद्युत अर्थात् सूक्ष्म कुण्डलिनी शक्ति के साक्षात्कार के समय योगी **स्वर्णिम वर्ण** के **अलौकिक दिव्य प्रभामण्डल** के दर्शन करता है।

नव्य योग पद्धति के ग्रन्थकारों द्वारा चित्त की एकाग्रता रूप धारणा के लिये षट्चक्र अथवा अष्टचक्र नामक कल्पित

लक्ष्य प्रख्यात हैं। अथर्व वेद के दशम काण्ड के द्वितीय सूक्त के इकत्तीसवें मन्त्र

अष्टा चक्रा नव द्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥

के अष्टाचक्र पद से आठ चक्रों की कल्पना की है। मन्त्र का देवता "**ब्रह्म प्रकाशनम्**" है अर्थात् ब्रह्म स्वरूप बृहद् प्रकृति का वर्णन। पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सत्त्व, रज तथा तम के संघात चक्र से रचित नवद्वारों से युक्त यह अविजित शरीर इन्द्रिय रूपी देवताओं का नगर है। इसमें स्वर्गिक प्रकाश से आपूरित **आनन्दमयकोष** है। सांख्य दर्शन के "**अष्टौ प्रकृतौ**" के अनुसार पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सत्त्व, रज तथा तम रूपी प्रकृति अष्टधा है। इन आठों के चक्र रूप संघात से शरीर की रचना हुई है।

योगी आसन से स्थिरता तथा सुख से युक्त होकर क्षुधा तृषादि द्वन्द्वों से मुक्त होकर योग साधन में सक्षम हो जाता है। अतः योगाभ्यास करने के लिए प्राणायाम करने से पूर्व आसन की स्थिरता आवश्यक है। कम से कम **एक घटिका** अर्थात् चौबीस मिनिट पर्यन्त आसन पर स्थिर बैठने का अभ्यास होने पर प्राणायाम करना आरम्भ करना चाहिए।

अन्तःकरण की अशुद्धि के कारण इन्द्रियां वशवर्त्ती नहीं होतीं। अशुद्ध अन्तःकरण तथा विषयोन्मुख इन्द्रियों से यम नियमों का पालन नहीं हो सकता है। अतः प्राणायाम के अभ्यास द्वारा अन्तःकरण तथा इन्द्रियों को शुद्ध करते हुए यम नियमों का दृढ़ता पूर्वक पालन करना चाहिए।

शरीरस्थ **मलदोष**, चित्तस्थ **विक्षेपदोष** तथा बुद्धि के **आवरणदोष** को दूर करने का एकमात्र साधन **प्राणायाम** है। आसन पर स्थिरतापूर्वक स्थित होकर श्वास प्रश्वास की गति का विच्छेद करना प्राणायाम है।

बाह्यवृत्ति प्राणायाम के अनवरत अभ्यास से मूलाकुञ्चन सिद्ध होने पर ध्यान की अवस्था में अपान मूल स्थान से उठकर नाभिस्थ समान में लय हो जाता है। नाभिस्थ समान उठकर हृदयस्थ प्राण में लय हो जाता है। हृदयस्थ प्राण उठकर कण्ठस्थ उदान में लय हो जाता है। अत्यधिक प्रयास करने पर कण्ठस्थ उदान उठकर मूर्द्धा में स्थिर हो जाता है। मूर्द्धा स्थित प्राण को उतारते हुये दृढ़ मूलाकुञ्चन को शनैः शनैः खोल देना चाहिए। यह **प्राणोत्थान पूर्वक पूर्व मार्ग** अर्थात् बङ्क नाल मार्ग से **प्राण संयमन** है। आभ्यन्तर प्राणायाम के अनवरत अभ्यास से मेरुदण्डस्थ मार्ग अर्थात् **पश्चिम मार्ग से मूलाकुञ्चन पूर्वक प्राण संयमन** होता है। मूलाकुञ्चन के शिथिल करने से प्राण अपने स्वरूप में स्थिर हो जाता है।

पूर्व मार्ग से प्राणोत्थान के समय अपान का अपने स्थान से उत्थान **ब्रह्म ग्रन्थि भेदन** है। हृदयस्थ प्राणोत्थान **विष्णु ग्रन्थि भेदन** है। कण्ठस्थ उदान का उठकर भ्रूमध्य में प्रवेश **रुद्र ग्रन्थि भेदन** है।

योग विषयक ग्रन्थों में पतञ्जलि मुनि प्रणीत योगदर्शन ही एक मात्र **प्राच्य आर्ष योगग्रन्थ** है, तथा मुनिवर पतञ्जलि ही प्राच्य आर्ष योग के एक मात्र **प्रवक्ता स्वरूप आचार्य** हैं। योग दर्शन को **मूल दर्शन से ही भली भांति** समझा जा सकता है।

योग की नव्य पद्धति का आरम्भ लगभग तीन हजार वर्ष पूर्व हुआ। यद्यपि योग की नव्य पद्धति का मूलाधार मुनिवर पतञ्जलि का योग दर्शन ही है। सम्प्रदायों के उत्पन्न होने पर उनके प्रवर्त्तकों ने योग को अपना अपना रूप दे दिया। नव्य योग के आचार्यों में **आचार्य मत्स्येन्द्र पाद, आचार्य गोरक्षपाद, आचार्य ज्वालेन्द्र पाद** अधिक प्रसिद्ध हैं।

सांख्य दर्शन के मतानुसार **"ध्यानं निर्विषयं मनः"** अर्थात् मन का विषयों के चिन्तन से सर्वथा रहित होना **ध्यान** है। योग दर्शन के मतानुसार **"देशबन्धश्चित्तस्यधारणा"** चित्त का एक देश में स्थिर होना अर्थात् चित्त की एकाग्रता **धारणा** है। **तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्"** जहाँ चित्त एकाग्र हुआ हो वहीं चित्त की **दृढ़ स्थिरता ध्यान** है।

अनेक सम्प्रदायों के अनुसार ध्यान की अनेक विधियाँ प्रचलित हैं। उनका आधार शब्द अर्थात् अनाहत नाद श्रवण तथा प्रकाश का दर्शन है।

प्राणायाम के अनवरत अभ्यास द्वारा बुद्धि का आवरण क्षीण होकर प्रकाश होने पर समाधि अवस्था में योगी किसी भी विषय में **संयम** करने पर **देश तथा काल का व्यवधान** होने पर भी **प्रातिभ ज्ञान** अथवा आन्तरिक प्रकाश के माध्यम से उसका **साक्षात्कार** कर लेता है।

जीवात्मा के पास **आनन्दमय कोष** है जिसके द्वारा वह प्रीति, प्रसन्नता, न्यूनानन्द तथा अधिकानन्द अनुभव करता है। अल्प परिमाण वाला, अल्पज्ञ, चेतनस्वरूप जीवात्मा, अल्पानन्द से नित्ययुक्त होते हुए भी अधिक आनन्द की निरन्तर कामना करता है। आनन्द की प्राप्ति समाधि से होती है, इसी-

लिये योगदर्शन का प्रथम पाद **समाधि पाद** है। समाधि साधन से सम्पन्न होता है। इसीलिये योग दर्शन का दूसरा पाद **साधन पाद** है। साधन का परिणाम विभूतियों का स्वतः उपलब्ध होना है। वस्तुतः साधन ठीक होने पर विभूतियां क्रमशः स्वतः ही सम्पन्न होने लगती हैं। इसीलिये योग दर्शन का तीसरा पाद **विभूति पाद** है। विभूति की पराकाष्ठा कैवल्य है। इसीलिए योग दर्शन का अन्तिम चौथा पाद **कैवल्य पाद** है।

योग दर्शन के समाधि पाद में चित्त के निरोध के परिणाम-स्वरूप समाधि प्राप्ति के आठ मार्गों का वर्णन है।

अ :—अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः ॥१।१२॥

अभ्यास तथा वैराग्य द्वारा चित्त वृत्तियों का निरोध होता है।

आ :—ईश्वरप्रणिधानाद्वा ॥१।२३॥

अथवा ईश्वर प्रणिधान से चित्त की वृत्तियों का निरोध होता है।

इ :—प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य ॥१।३४॥

अथवा प्राण को बाहर निकाल कर धारण करने से चित्त की वृत्तियों का निरोध होता है।

ई :—विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थिति-निबन्धनी ॥१।३५॥

अथवा विषयवती प्रवृत्ति उत्पन्न होकर मन को बांधनेवाली होती है।

उ :—विशोका वा ज्योतिष्मती ॥१।३६॥

अथवा शोक रहित ज्योतिष्मती प्रवृत्ति चित्त की वृत्तियों का निरोध करती है।

ऊ :—वीतरागविषयं वा चित्तम् ।।१।३७।।

अथवा रागादि से रहित होने पर चित्त निरुद्ध हो जाता है।

ए :—स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा ।।१।३८।।

अथवा स्वप्न और निद्रावस्था में ज्ञान के आलम्बन से चित्त निरुद्ध हो जाता है।

ऐ :—यथाभिमतध्यानाद्वा ।।१।३९।।

अथवा अभिमत के ध्यान से चित्त निरुद्ध हो जाता है।

तप का मूल उद्देश्य चित्त वृत्तियों का निरोध कर समाधि प्राप्त करना है। "**प्राणायामं परमं तपः**" के अनुसार प्राणायाम ही परम तप है।

साधक के लिये आयु का बन्धन नहीं है। बाल्यकाल से निरन्तर की गई साधना के फलस्वरूप साधक तारुण्य से पूर्व ही **सिद्धावस्था** को प्राप्त कर लेता है। साधक निर्बल नहीं होना चाहिए। साधक का स्वभाव **कोमल, सरल, दृढ़श्रमनिष्ठ** तथा **आज्ञानुवर्त्ती** होना चाहिए। स्वाध्याय द्वारा विषय को समझने में सक्षम होने के लिये साधक का **पठित** होना आवश्यक है। साधक को नियमित रूप से **पवित्र, सुगन्धित, सुपाच्य, मृदु** तथा **निरामिष** भोजन करना चाहिये।

साधना के लिये शान्त तथा स्वच्छ वातावरण युक्त एकान्त स्थान होना चाहिए। शान्त समय में **रिक्त पेट** अथवा भोजन **के तीन घन्टे पश्चात्** साधना करनी चाहिए। **सुकोमल तथा गुदगुदे आसन** पर स्थिर रूप से स्थित होकर अभ्यास करना चाहिये।

दृढ़ ईश्वर निष्ठा, पवित्रात्मा आचार्य का परिचर्यापूर्वक आश्रय, तीव्र संवेग, विवेक, वैराग्य तथा अभ्यास, योग साधन के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा अनिवार्य हैं।

प्राणायाम के अनवरत अभ्यास से अन्तःकरण तथा इन्द्रियों का शुद्ध होकर अलौकिक क्षमताओं से निरन्तर सम्पन्न होना **विभूति सम्पन्न** होना है। शरीर तथा इन्द्रियादि अन्तःकरण का शुद्ध होकर अलौकिक प्रतिभाओं से सम्पन्न होना **विभूति-युक्त** होना है।

"**देशबन्धश्चित्तस्य धारणा**" सूत्र से विभूतिपाद प्रारम्भ होता है। चित का एकाग्र होना **धारणा** नामक **प्रथम विभूति** है। "**सत्त्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यम्**" विभूति पाद का अन्तिम सूत्र है। सत्त्व अर्थात् बुद्धि तथा पुरुष की शुद्धि एवम् साम्यावस्था कैवल्य है। **कैवल्य ही विभूति की पराकाष्ठा है।**

किसी भी मन्त्र का निष्ठापूर्वक पुनः पुनः उच्चारण **वाचिक जप** है। ध्वनि रहित, जिह्वा तथा ओष्ठ के स्पन्दन से युक्त किसी भी मन्त्र की पुनः पुनः आवृत्ति **उपांशु जप** है। जिह्वा तथा ओष्ठ के स्पन्दन से रहित किसी भी मन्त्र की पुनः पुनः मानसिक आवृत्ति **मानसिक जप** है। जप द्वारा चित्त की एकाग्रता, प्रगाढ़ एकाग्रता, तथा निरुद्धावस्था प्राप्त करना **मन्त्र-योग** है।

"**जन्मौषधिमन्त्रतपः समाधिजाः सिद्धयः**" सूत्र से कैवल्य पाद आरम्भ होता है। पूर्व जन्मकृत साधना के परिणामस्वरूप **जन्मजा सिद्धि,** औषधि सेवन से **औषधिजा सिद्धि,** मन्त्र जपानुष्ठान से **मन्त्रजा सिद्धि,** व्रतोपवास तथा प्राणायाम रूपी तप से **तपजा सिद्धि** तथा समाधि के अनुष्ठान से **समाधिजा सिद्धियां** उत्पन्न होती हैं। "**पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रति प्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति**" पुरुषार्थ की समाप्ति तथा गुणों की निष्क्रियता कैवल्य है अथवा चेतन का अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित होना कैवल्य है।

योग दर्शन की भोजवृति नामक टीका में साधन पाद के प्राणायाम प्रकरण में **रेचक, पूरक** तथा **कुम्भक** शब्द मिलते हैं तथा **नाड़ी चक्रों** का वर्णन मिलता है। अर्थात् राजर्षि भोज के पूर्व नव्य योग पद्धति प्रचलित हो चुकी थी। योग दर्शन के साधन पाद के सूत्र २० का **"द्रष्टा दृशिमात्र:"** पद तथा कैवल्य पाद के सूत्र बाईस का **"चित्तेरप्रतिसंक्रमाया"** पद विचारणीय है।

योगदर्शनकार ने योगदर्शन में योग सूत्रों द्वारा सहजगम्य व्याख्यात्मक क्रम रखा है। योगदर्शन का व्यास मुनि कृत भाष्य, पतञ्जलि मुनि प्रणीत योग दर्शन की उत्कृष्ट शैली के किसी सीमा तक अधिक समीप तथा युक्तियुक्त है। योगदर्शन के अन्य सभी भाष्य मुनिवरपतञ्जलि की अभिव्यक्तात्मक शैली से सर्वथा भिन्न है।

योग विद्या का मूल **वेद** है। अनन्त परमात्मा का अनाद ज्ञान होने पर भी वेद तथा वेद का ज्ञान अनन्त नहीं है। **अल्प प्राण को अनन्त ज्ञान** दिया ही नहीं जा सकता है।

स्वामी आत्मानन्द तीर्थ
रविवार चैत्र शुक्ल प्रतिपदा, २०४८ विक्रमी।
प्रविष्टे ४ चैत्र २०४७ विक्रमी।

योगदर्शनम्

ओ३म्

समाधि पादः

१. अथ योगानुशासनम् ॥१।१॥

पदार्थ :—(अथ) आरम्भ करते हैं, (योग) योग (अनुशासनम्) शास्त्र।

भावार्थ :—योग शास्त्र आरम्भ करते हैं।

२. योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥१।२॥

पदार्थ :—(योगः) योग, (चित्तवृत्ति) चित्त की वृत्तियों का (निरोधः) रोकना है।

भावार्थ :—चित्त की वृत्तियों का निरोध अर्थात् रोकना योग है।

३. तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ॥१।३॥

पदार्थ :—(तदा) उस समय (द्रष्टुः) द्रष्टा (स्वरूपे) अपने स्वरूप में, (अवस्थानम्) स्थित होता है।

भावार्थ :—चित्त की वृत्तियों के निरुद्ध हो जाने पर द्रष्टा अर्थात् जीवात्मा अपने स्वरूप में स्थित होता है।

४. वृत्तिसारूप्यमितरत्र ॥१।४॥

पदार्थ :—(वृत्तिः) वृत्तियां, (सारूप्यम्) चित के स्वरूप के अनुरूप होती हैं, (इतर अत्र) भिन्न अवस्था में।

भावार्थ :—निरुद्धावस्था से भिन्न अवस्था में चित्त की वृत्तियां चित्त के स्वरूप के अनुरूप होती हैं।

चित्त की शुद्धता के कारण योगी के चित्त की वृत्तियां सामान्य लोगों से सर्वथा भिन्न, शुद्ध स्वरूपवाली होती हैं।

५. वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टाक्लिष्टाः ॥१।५॥

पदार्थ :—(वृत्तयः) वृत्तियां, (पञ्चतय्यः) पांच प्रकार की हैं, (क्लिष्टाः) क्लिष्ट अर्थात् बाधक, (अक्लिष्टाः) अक्लिष्ट अर्थात् सहायक।

भावार्थ :—वृत्तियां क्लिष्ट अर्थात बाधक अक्लिष्ट अर्थात् सहायक भेद से पांच प्रकार की हैं।

६. प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः ॥१।६॥

पदार्थ :—(प्रमाण) प्रमाण, (विपर्यय) विपर्यय, (विकल्प) विकल्प, (निद्रा) निद्रा तथा (स्मृतयः) स्मृति।

भावार्थ :—प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा तथा स्मृति ये चित्त की पांच वृत्तियां हैं।

७. प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि ॥१।७॥

पदार्थ :—(प्रत्यक्ष) प्रत्यक्ष, (अनुमान) अनुमान तथा (आगमाः) आगम, (प्रमाणानि) प्रमाण हैं।

भावार्थ :—इन्द्रिय जन्य ज्ञान प्रत्यक्ष है। अप्रत्यक्ष विषय का युक्ति और लक्षणों द्वारा ज्ञान अनुमान है। वेद, शास्त्र तथा आप्त पुरुषों के वाक्य आगम हैं। प्रत्यक्ष अनुमान तथा आगम प्रमाण हैं।

८. विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम् ॥१।८॥

पदर्थि :—(विपर्ययः) विपरीत ज्ञान, (मिथ्या ज्ञानम्) मिथ्या ज्ञान, (अतद् रूप प्रतिष्ठम्) जो वस्तु के स्वरूप में प्रतिष्ठित नहीं है अर्थात् वस्तु के स्वरूप से भिन्न है।

भावार्थ :—जो ज्ञान वस्तु के स्वरूप से विपरीत अर्थात् भिन्न है वह विपर्यय अर्थात् विपरीत ज्ञान जो मिथ्या ज्ञान है।

९. शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः ॥१।९॥

पदार्थ :—(शब्द ज्ञानानुपाती) शब्द के द्वारा उत्पन्न ज्ञान (वस्तु शून्यः) वस्तु का अभाव (विकल्पः) विकल्प है।

भावार्थ :—पदार्थ के अभाव में केवल शब्द द्वारा पदार्थ की कल्पना करना विकल्प है।

१०. अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा ॥१।१०॥

पदार्थ :—(अभाव प्रत्यय आलम्बना) अभाव के ज्ञान का आश्रय वाली (वृत्तिः निद्रा) वृत्ति निद्रा है।

भावार्थ :—ज्ञान के अभाव वाली वृत्ति का नाम निद्रा है।

निद्रावस्था में इन्द्रियां बाह्य ज्ञान ग्रहण नहीं करती हैं, तथा मन भी सङ्कल्पों से रहित होता है।

११. अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः ॥१।११॥

पदार्थ :—(अनुभूत विषयासम्प्रमोषः) अनुभूत विषय का न छिपना अर्थात् पुनः स्मरण होना (स्मृतिः) स्मृति है।

भावार्थ :—अनुभूत विषय का पुनः स्मरण होना स्मृति है।

१२. अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः ॥१।१२॥

पदार्थ :—(अभ्यासवैराग्याभ्यां) अभ्यास तथा वैराग्य से (तत् निरोधः) चित्त वृत्तियों का निरोध होता है।

भावार्थ :—अभ्यास तथा वैराग्य से चित्त की वृत्तियों का निरोध होता है।

१३. तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः ॥१।१३॥

पदार्थ :—(तत्र) निरुद्धावस्था में (स्थितौ) स्थित रहने का (यत्नः) प्रयत्न, (अभ्यासः) अभ्यास है।

भावार्थ :—चित्त के निरुद्धावस्था में स्थित रहने के लिए क्रिये जाने वाले प्रयत्न का नाम अभ्यास है।

१४. स तु दीर्घकाल नैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढ़भूमिः ॥१।१४॥

पदार्थ :—(सः) वह (तु) परन्तु (दीर्घकाल) दीर्घकाल तक (नैरन्तर्य) निरन्तर (सत्कारा) आदर सहित (सेवितः) सेवन करने पर (दृढ़ भूमिः) स्थिति दृढ़ हो जाती है।

भावार्थ :—चित्त को निरुद्धावस्था में रखने वाले यत्न अभ्यास का दीर्घकाल तक श्रद्धा सहित निरन्तर सेवन करने पर चित्त की निरुद्धावस्था रूपी स्थिति दृढ़ हो जाती है।

१५. दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम् ॥१।१५॥

पदार्थ :—(दृष्ट आनुश्रविक) देखे और सुने हुये (विषय) विषय में (वितृष्णस्य) सर्वथा तृष्णा रहित चित्त की (वशीकार संज्ञा) वशीकार अवस्था, (वैराग्यम्) वैराग्य है।

भावार्थ :—देखे और सुने हुये विषय के प्रति आकर्षित न होकर विषय की सर्वथा उपेक्षा करने वाले चित्त की वशीकार स्थिति वैराग्य है।

१६. तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम् ॥१।१६॥

पदार्थ :—(तत्) वैराग्य से (परम पुरुष ख्यातेः) परमात्मा का ज्ञान तथा, (गुण वैतृष्ण्यम्) गुणों में अरुचि हो जाती है।

भावार्थ :—विषयों के प्रति वैराग्य होने पर परमात्मा का ज्ञान तथा प्रकृति के सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण और उनके कार्यों में विरक्ति हो जाती है।

१७. वितर्कविचारानन्दास्मितारूपानुगमात् सम्प्रज्ञातः ॥१।१७॥

पदार्थ :—(वितर्क, विचार, आनन्द, अस्मिता) वितर्क, विचार आनन्द तथा अस्मिता (रूप अनुगमात्सम्प्रज्ञातः) स्वरूप अनुगत् सम्प्रज्ञात समाधि है।

भावार्थ :—वितर्क, विचार, आनन्द तथा अस्मिता के स्वरूप के अनुगत् सम्पन्न होने वाली समाधि सम्प्रज्ञात समाधि है।

अ :—सवितर्क समाधि :—ग्राह्य पदार्थों के स्थूल स्वरूप में शब्द, अर्थ और ज्ञान के विकल्प रहने तक की जानेवाली समाधि **सवितर्क समाधि** है।

आ :—सविचार या विचारानुगत् समाधि :—ग्राह्य ग्रहण विषय के सूक्ष्म स्वरूप में शब्द, अर्थ और ज्ञान के विकल्प रहने तक की जाने वाली समाधि **सविचार समाधि** है।

इ :—आनन्दानुगत् समाधि :—समाधि की विचार रहित अवस्था में (निर्विचार अवस्था में) आनन्द की अनुभूति तथा अहङ्कार विद्यमान रहने तक की जाने वाली आनन्दानुगत् समाधि है।

ई :—अस्मितानुगत् समाधि :—केवल मात्र आत्मस्वरूप के आश्रय से की जाने वाली समाधि **अस्मितानुगत समाधि** है।

१८. विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः ॥१।१८॥

पदार्थ : (विराम प्रत्यय अभ्यास पूर्वः) चित्त की वृत्तियों की समाप्ति रूप विराम का प्रत्यय अर्थात् ज्ञान के (अभ्यास पूर्वः) पुनः पुनः अभ्यास से (संस्कार शेषः अन्यः) अन्य संस्कार मात्र शेष रहते हैं।

भावार्थ :—वृत्तियों के समाप्ति रूप ज्ञान के निरन्तर अभ्यास से केवल संस्कार मात्र विद्यमान रहते हैं।

१९. भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम् ॥१।१९॥

पदार्थ :—(भव प्रत्यय) शरीर तथा शरीर प्राप्ति के हेतु विषयक ज्ञान मात्र शेष रहता है। (विदेह प्रकृतिलयानाम) विदेह तथा प्रकृतिलयसंज्ञक योगियों के लिये।

भावार्थ :—पूर्व जन्म कृत साधन के प्रभाव से स्थूल शरीर के बन्धन से रहित होकर सूक्ष्म शरीर द्वारा स्थूल शरीर के बाहर रहने की क्षमता प्राप्त "महा विदेहा" स्थिति वाले **विदेह संज्ञक योगी** तथा सूक्ष्म विषय रूप मूल प्रकृति पर अधिकार करने में सक्षम **प्रकृति लय संज्ञक योगी** स्वभावतः भव प्रत्यय संज्ञक निर्बीज समाधि में समर्थ होते हैं। उनके लिये प्रारब्ध स्वरूप प्राप्त शरीर तथा जगत का ज्ञान मात्र ही **भव प्रत्यय** है।

२०. श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम् ॥१।२०॥

पदार्थ :—(श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि, प्रज्ञा पूर्वक) श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि तथा प्रज्ञा पूर्वक, (इतरेषाम्) अन्यों को यह योग सम्पन्न होता है।

भावार्थ :—**भव प्रत्यय** से भिन्न, **उपाय प्रत्यय** द्वारा उपासना योग को सम्पन्न करने वाले योगियों को यह परमेश्वर की उपासना रूपी योग, श्रद्धा अर्थात् सत्य को धारण करने विषयक उत्साह, वीर्य अर्थात् सामर्थ्य, स्मृति, चित्त के निरोध स्वरूप समाधि तथा विवेक ख्याति रूप प्रज्ञा द्वारा सम्पन्न होता है।

उपाय प्रत्यय की दृष्टि से योगियों के तीन भेद हैं—

अ :—मृदूपाय। आ :—मध्यमोपाय। इ :—अधिमात्रोपाय।

२१. तीव्र संवेगानामासन्नः ॥१।२१॥

पदार्थ :—(तीव्र संवेगानाम्) तीव्र संवेग युक्त योगियों को यह उपासना योग (आसन्नः) शीघ्र सम्पन्न होता है।

भावार्थ :—तीव्र संवेग युक्त योगियों को यह उपासना योग शीघ्र सम्पन्न होता है।

२२. मृदुमध्याधिमात्रत्वात्ततोऽपि विशेषः ॥१।२२॥

पदार्थ :—(मृदु) मन्द गति से साधन परायण, (मध्य) मध्यम गति से साधन परायण तथा (अधिमात्रत्वात्) तीव्र गति से साधन परायणों में (ततः) संवेग की दृष्टि से उनमें (अपि) भी (विशेषः) विशेषता है।

भावार्थ :—मृदूपाय, मध्योपाय तथा अधिमात्रोपाय वालों में भी संवेग की दृष्टि से विशेषाविशेष का अन्तर है।

२३. ईश्वरप्रणिधानाद्वा ॥१।२३॥

पदार्थ :—(ईश्वर प्रणिधानात्) ईश्वर प्रणिधान से समाधि सम्पन्न होती है, (वा) अथवा।

भावार्थ :—अथवा ईश्वर प्रणिधान अर्थात् दृढ़ ईश्वर निष्ठा से समाधि सम्पन्न होती है।

२४. क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ॥१।२४॥

पदार्थ :—(क्लेश, कर्म, विपाक, आशयैः) क्लेश, कर्म, कर्मफल तथा इच्छाओं से (अपरामृष्टः) रहित (पुरुष विशेष ईश्वरः) पुरुष विशेष ईश्वर है।

भावार्थ :—अविद्यादि क्लेशों, शुक्लाशुक्ल कर्मों, कर्मफल तथा इच्छाओं से रहित पुरुष विशेष ईश्वर है।

२५. तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम् ॥१।२५॥

पदार्थ :—(तत्र) उस ईश्वर में (निरतिशयं) अनन्त (सर्वज्ञ बीजम्) सर्वज्ञता का मूल है।

भावार्थ :—उस ईश्वर में अनन्त ज्ञान है अर्थात् ईश्वर सर्वज्ञ है।

सर्वज्ञता सातिशय तथा निरतिशय है। ईश्वर की सर्वज्ञता निरतिशय है।

२६. स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ॥१।२६॥

पदार्थ :—(स) वह ईश्वर, (पूर्वेषाम्) पूर्वोत्पन्न लोगों का (अपि) भी (गुरुः) गुरु है। (कालेन्) काल के (अनवच्छेदात्) व्यवधान से रहित होने के कारण।

भावार्थ :—काल के व्यवधान से रहित होने के कारण, वह ईश्वर पूर्वोत्पन्न हुये लोगों का भी गुरु है।

२७. तस्य वाचकः प्रणवः ॥१।२७॥

पदार्थ :—(तस्य) उस ईश्वर का, (वाचकः) वाचक (प्रणवः) प्रणव है।

भावार्थ :—उस ईश्वर का अभिव्यक्ता प्रणव अर्थात् ओ३म् है।

२८. तज्जपस्तदर्थभावनम् ॥१।२८॥

पदार्थ :—(तत् जपः) उस प्रणव का जप (तदर्थ भावनम्) उसके अर्थ का चिन्तन सहित ईश्वर में निष्ठापूर्वक करना चाहिये।

भावार्थ :—उस प्रणव अर्थात् ओ३म् का जप ओ३म् के अर्थचिन्तन सहित दृढ़ ईश्वरनिष्ठापूर्वक करना चाहिए।

२९. ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ॥१।२९॥

पदार्थ :—(ततः) प्रणव के जप से (प्रत्यक् चेतनाधिगमः) चेतनस्वरूप ब्रह्म की प्राप्ति तथा (अपि अन्तरायाभावः च) अन्तरायों का भी अभाव हो जाता है।

भावार्थ :—प्रणव अर्थात् ओ३म् का दृढ़ ईश्वरनिष्ठापूर्वक जप करने से अन्तरायों का अभाव होकर चेतनस्वरूप ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है।

३०. व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः ॥१।३०॥

पदार्थ :—(व्याधि) शारीरिक रोग, (स्त्यान) अकर्मण्यता अर्थात् साधन में प्रवृत्ति न होने का स्वभाव, (संशय) साधन की सफलता में सन्देह, (प्रमाद) योग साधन के उपायों की उपेक्षा, (आलस्य) चित्त तथा शरीर के भारीपन के कारण साधन में रूचि न होना, (अविरति) वैराग्य का अभाव, (भ्रान्ति दर्शन) विपरीत ज्ञान, (अलब्ध भूमिकत्व) समाधि की अप्राप्ति तथा (अनवस्थितत्वानि) चित्त का समाधि में स्थित न होना, (चित्त विक्षेपास्ते अन्तरायाः) ये चित्त के विक्षेप रूप विघ्न हैं।

भावार्थ :—शारीरिक रोग, अकर्मण्यता अर्थात् साधन में प्रवृत्त न होने का स्वभाव, साधन की सफलता में सन्देह, योग साधन के उपायों की उपेक्षा, चित्त तथा शरीर के भारीपन के कारण साधन में रूचि न होना, वैराग्य का अभाव, विपरीत ज्ञान, समाधि की अप्राप्ति तथा चित्त का समाधि में स्थित न होना, ये चित्त के विक्षेप रूप विघ्न अर्थात् नौ अन्तराय हैं।

३१. दुःखदौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुव ॥१।३१॥

पदार्थ :—(दुःख) दुःख, (दौर्मनस्य) मानसिक क्षोभ, (अङ्गमेजयत्व) शारीरिक अङ्गों की अस्थिरता तथा (श्वास प्रश्वासाः) श्वास प्रश्वास रूपी विघ्न (विक्षेप सहभुव) विक्षेप के साथ उत्पन्न होते हैं।

भावार्थ :—आध्यात्मिक दुःख, अर्थात् शारीरिक दुःख, आधिदैविक दुःख अर्थात् प्राकृतिक विपत्तियां, आधिभौतिक दुःख अर्थात् प्राणिजन्य दुःख, इच्छाओं की पूर्ति के अभाव में उत्पन्न मानसिक क्षोभ तथा श्वास प्रश्वास रूपी विघ्न विक्षेप रूपी अन्तरायों के साथ उत्पन्न होते हैं।

३२. तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः ॥१।३२॥

पदार्थ :—(तत् प्रतिषेधार्थम्) उन अन्तरायों तथा उनके साथ उत्पन्न होने वाले विघ्नों को दूर करने के लिये (एक तत्त्वाभ्यासः) एक तत्त्व अर्थात् परमात्मतत्त्व का अभ्यास करना चाहिए।

भावार्थ :—उन अन्तरायों तथा उनके साथ उत्पन्न होनेवाले विघ्नों को दूर करने के लिए एक तत्त्व अर्थात् परमात्मतत्त्व का अभ्यास करना चाहिए।

३३. मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम् ॥१।३३॥

पदार्थ :—(मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षाणाम्) मैत्री, करुणा, प्रसन्नता तथा उपेक्षा (सुख, दुःख, पुण्य, अपुण्य) सुखी दुःखी, पुण्यात्मा तथा पापियों के प्रति (भावनातः चित्त प्रसादनम्) की भावना योगी के चित्त की प्रसन्नता के आधार हैं।

भावार्थ :—सुखी प्राणियों से मित्रता, दुःखी प्राणियों के प्रति करुणा, पुण्यात्माओं को देख कर प्रसन्न होना तथा पापियों के प्रति उपेक्षा की भावना योगी के चित्त की प्रसन्नता के आधार हैं।

३४. प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य ॥१।३४॥

पदार्थ :—(प्रच्छर्दन) प्राण वायु को बाहर निकालने तथा (विधारणाभ्यां वा) धारण करने से अथवा।

भावार्थ :—अथवा प्राण वायु को प्रश्वास द्वारा बाहर निकाल कर धारण करने से चित्त निरुद्ध हो जाता है।

३५. विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थिति-निबन्धनी ॥१।३५॥

पदार्थ :—(विषयवती वा) अथवा विषयोन्मुख (प्रवृत्तिः उत्पन्ना) प्रवृत्ति उत्पन्न होकर (मनसः स्थिति) मन की स्थिति को (निबन्धनी) बाँधने वाली होती है।

भावार्थ :—अथवा विषयोन्मुख प्रवृत्ति उत्पन्न होकर मन को बाँधने वाली होती है।

३६. विशोका वा ज्योतिष्मती ॥१।३६॥

पदार्थ :—(विशोका वा) अथवा शोक रहित, (ज्योतिष्मती) प्रकाशमयी प्रवृत्ति चित्त को बाँधने वाली होती है।

भावार्थ :—अथवा शोक रहित प्रकाशमयी प्रवृत्ति चित्त को बाँधने वाली होती है।

३७. वीतरागविषयं वा चित्तम् ॥१।३७॥

पदार्थ : (वीतरागविषयं वा) अथवा विषयों के मोह से रहित (चित्तम्) चित्त स्थिर हो जाता है।

भावार्थ :—अथवा विषयों के मोह से रहित होने पर चित्त स्थिर हो जाता है।

३८. स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा ॥१।३८॥

पदार्थ :—(स्वप्न निद्रा ज्ञान आलम्बनं वा) अथवा स्वप्नावस्था तथा निद्रावस्था के तुल्य ज्ञान के आश्रय से चित्त स्थिर हो जाता है।

भावार्थ :—अथवा स्वप्नावस्था तथा निद्रावस्था के तुल्य ज्ञान के आश्रय से चित्त स्थिर हो जाता है।

३९. यथाभिमतध्यानाद्वा ॥१।३९॥

पदार्थ :—(यथा अभिमत ध्यानात् वा) अथवा इच्छानुकूल विषय का ध्यान करने से चित्त स्थिर हो जाता है।

भावार्थ :—अथवा इच्छानुकूल विषय का ध्यान करने से चित्त स्थिर हो जाता है।

४०. परमाणु परममहत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः ॥१।४०॥

पदार्थ :—(परमाणु) परमाणु से लेकर [परम महत्त्वान्तः] परम स्थूल विषय तक (अस्य) चित्त को (वशीकारः) स्थिर करने के आधार हैं।

भावार्थ :—परमाणु से लेकर स्थूल विषय तक चित्त को स्थिर करने के आधार हैं।

४१. क्षीणवृत्तेरभिजातस्येव मणेर्ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु तत्स्थ-तदञ्जनता समापत्तिः ॥१।४१॥

पदार्थ :—(क्षीण वृत्तेः) क्षीण वृत्ति वाले, (अभिजातस्य इव मणेः) स्फटिक मणि के तुल्य स्वच्छ चित्त की (ग्रहीतृ ग्रहण ग्राह्येषु) ग्रहीता, ग्रहण तथा ग्राह्य विषयों में, (तत्स्थ) उस चित्त की स्थिरता [तत् अञ्जनता] तदाकारता [समापत्तिः] समाधि है।

भावार्थ :—स्फटिक मणि के तुल्य स्वच्छ तथा क्षीण वृत्ति वाले चित्त की ग्रहीता, ग्रहण तथा ग्राह्य विषयों में स्थिरता तदाकारता समाधि है।

४२. तत्र शब्दार्थ ज्ञान विकल्पैः संकीर्णा सवितर्का समापत्तिः ॥१।४२॥

पदार्थ :—[तत्र] उन समाधियों में [शब्द अर्थ ज्ञान विकल्पैः] शब्द अर्थ तथा ज्ञान के विकल्प में [संकीर्णाः] फैली हुई [सवितर्का] सवितर्क [समापत्तिः] समाधि है।

भावार्थ :—उन समाधियों में, शब्द, अर्थ तथा ज्ञान के विकल्प से युक्त सवितर्क समाधि है।

४३. स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरूपशून्येवार्थमात्रनिर्भासा निर्वितर्का ॥१।४३॥

पदार्थ :—(स्मृति परिशुद्धौ) स्मृति के अत्यन्त शुद्ध हो जाने तथा (स्वरूप शून्या इव) स्वरूप शून्यवत् होने पर (अर्थ मात्र निर्भासा) ध्येय मात्र को प्रकाशित करने वाली (निर्वितर्का) निर्वितर्क समाधि है।

भावार्थ :—स्मृति के अत्यन्त शुद्ध हो जाने तथा स्वरूप के शून्यवत् होने पर ध्येयमात्र को प्रकाशित करने वाली निर्वितर्क समाधि है।

४४. एतयैव सविचारा निर्विचारा च सूक्ष्मविषया व्याख्याता ॥१।४४॥

पदार्थ :—(एतयैव) इससे ही (सविचारा निर्विचारा च) सविचार तथा निर्विचार समाधि द्वारा, (सूक्ष्म विषया व्याख्याता) सूक्ष्म विषय पर्यन्त वर्णन किया गया है।

भावार्थ :—पूर्वोक्त सवितर्क तथा निर्वितर्क समाधियों के वर्णन से सूक्ष्म विषय पर्यन्त की जाने वाली सविचार तथा निर्विचार समाधि का वर्णन किया गया है।

४५. सूक्ष्मविषयत्वं चालिङ्गपर्यवसानम् ॥१।४५॥

पदार्थ :—(सूक्ष्म विषयत्वं च) तथा सूक्ष्म विषय से लेकर (अलिङ्ग पर्यवसानम्) प्रकृति पर्यन्त विस्तार है।

भावार्थ :—सविचार तथा निर्विचार समाधि का सूक्ष्म विषय से लेकर प्रकृति पर्यन्त विस्तार है।

४६. ता एव सबीजः समाधिः ॥१।४६॥

पदार्थ :—(ता एव) उपर्युक्त सभी (सबीजः समाधिः) सबीज समाधि हैं।

भावार्थ :—उपर्युक्त वर्णित सभी समाधि सबीज समाधि हैं।

४७. निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्म प्रसादः ॥१।४७॥

पदार्थ :—(निर्विचार वैशारद्ये) निर्विचार समाधि के सम्पन्न होने से (अध्यात्म प्रसादः) अध्यात्म की प्राप्ति होती है।

भावार्थ :—निर्विचार समाधि के सम्पन्न होने पर अध्यात्म की प्राप्ति होती है।

४८. ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा ॥१।४८॥

पदार्थ :—(ऋतम्भरा तत्र) उस समय निश्चयात्मक स्थिरता से युक्त (प्रज्ञा) बुद्धि होती है।

भावार्थ :—उस समय बुद्धि स्थिर सत्य ज्ञान से युक्त ऋतम्भरा संज्ञक होती है।

४९. श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया विशेषार्थत्वात् ॥१।४९॥

पदार्थ :—(श्रुत अनुमान प्रज्ञाभ्याम्) सुनी हुई तथा अनुमानित बुद्धि से (अन्य विषया) भिन्न प्रकार की होती है (विशेषार्थत्वात्) विशेष अर्थ वाली होने के कारण।

भावार्थ :—समाधिजन्य ऋतम्भरा संज्ञक बुद्धि, समाधि विषयिणी होने के कारण सुनी हुई तथा अनुमानित बुद्धि से विलक्षण होती है।

५०. तज्जः संस्कारोऽन्यसंस्कारप्रतिबन्धी ॥१।५०॥

पदार्थ :—(तत् जः संस्कारः) समाधि जन्य बुद्धि से उत्पन्न हुए संस्कार (अन्य संस्कार प्रतिबन्धी) अन्य संस्कारों को रोकने वाले होते हैं।

भावार्थ :—समाधि जन्य ऋतम्भरा संज्ञक बुद्धि से उत्पन्न संस्कार अन्य संस्कारों को रोकने वाले होते हैं।

५१. तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधिः ॥१।५१॥

पदार्थ :—(तस्यापि निरोधे) समाधि जन्य बुद्धि से उत्पन्न संस्कारों के भी निरोध से (सर्व निरोधात्) सब संस्कारों के निरुद्ध हो जाने के फलस्वरूप (निर्बीजः समाधिः) निर्बीज समाधि होती है।

भावार्थ :—समाधि जन्य ऋतम्भरा संज्ञक बुद्धि से उत्पन्न हुये संस्कारों के निरोध से समस्त संस्कारों के निरुद्ध हो जाने के फलस्वरूप निर्बीज समाधि सम्पन्न होती है।

॥ इति समाधि पादः ॥

साधन पादः

५२. तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः ॥२।१॥

पदार्थ :—(तपः स्वाध्याय ईश्वर प्रणिधानानि) तप स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान (क्रिया योगः) क्रियायोग है।

भावार्थ :—तप स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान क्रिया योग है।

यम से लेकर प्रत्याहार पर्यन्त तप है। धारणा तथा ध्यान **स्वाध्याय** के अन्तर्गत है। समाधि **ईश्वर प्रणिधान** है।

५३. समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च ॥२।२॥

पदार्थ :—(समाधि भावनार्थः) समाधि सिद्ध करने के लिए (क्लेश तनूकरणार्थः च) तथा अविद्यादि क्लेश दूर करने के लिए है।

भावार्थ :—उपर्युक्त क्रिया योग समाधि प्राप्त करने तथा अविद्यादि क्लेशों को दूर करने के लिए है।

५४. अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः ॥२।३॥

पदार्थ :—(अविद्या अस्मिता राग द्वेष अभिनिवेशाः) अविद्या अस्मिता राग द्वेष तथा अभिनिवेश (क्लेशाः) पाँच क्लेश हैं।

भावार्थ :—अविद्या अस्मिता राग द्वेष तथा अभिनिवेश ये पाँच क्लेश हैं।

५५. अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नो-दाराणाम् ॥२।४॥

पदार्थ :—(अविद्या क्षेत्रम्) अविद्या क्षेत्र है (उत्तर एषाम्) आगे के (प्रसुप्त तनु विच्छिन्न उदाराणाम्) प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न तथा उदार अवस्थाओं वाले क्लेशों का।

भावार्थ : प्रसुप्त अर्थात् निष्क्रिय, तनु अर्थात् शक्तिहीन, विच्छिन्न अर्थात् अन्य क्लेश की अवस्था में निष्प्रभ तथा उदार अर्थात् पूर्णतः कार्यरत अवस्थाओं वाले क्लेशों का क्षेत्र अविद्या है।

५६. अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्म-ख्यातिरविद्या ॥२।५॥

पदार्थ :—(अनित्य, अशुचि, दुःख, अनात्मसु) अनित्य, अपवित्र, दुःख तथा अनात्मा में, (नित्य शुचि, सुख, आत्मसु ख्यातिः अविद्या) नित्य पवित्र सुख तथा आत्म भाव की अनुभूति अविद्या है।

भावार्थ :—अनित्य में नित्यतापरक भाव, अपवित्र में पवित्रता परक भाव, दुःख में सुख परक भाव तथा अनात्म में आत्म भाव अविद्या है।

५७. दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता ॥२।६॥

पदार्थ :—(दृक् दर्शन शक्त्योः) द्रष्टा तथा दर्शन शक्ति की (एकात्मता इव अस्मिता) एकता मानना ही अस्मिता है।

भावार्थ :—द्रष्टा तथा दर्शन शक्ति की एकता मानना अस्मिता है।

५८. सुखानुशयी रागः ॥२।७॥

पदार्थ :—(सुखानुशयी) सुख का पुनः पुनः स्मरण राग है। (सुख के अनुशय से रहने वाली स्मृति राग है।)

भावार्थ :—सुख का पुनः पुनः स्मरण राग है।

५९. दुःखानुशयी द्वेषः ॥२।८॥

पदार्थ :—(दुःख अनुशयी) दुःख का पुनः पुनः स्मरण (द्वेषः) द्वेष है। (दुःख के अनुशय से रहने वाली स्मृति द्वेष है।)

भावार्थ—दुःख का पुनः पुनः स्मरण द्वेष है।

६०. स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभिनिवेशः ॥२।९॥

पदार्थ :—(स्वरसवाही) अपने स्वभाव को प्राप्त कराने वाला (विदुषः अपि) विद्वानों को भी (तथारूढ) यथावत् प्राप्त (अभिनिवेशः) अभिनिवेश है।

भावार्थ :—अविद्वानों के तुल्य विद्वानों को भी समान रूप से प्रभावित करने वाला क्लेश अभिनिवेश है।

जैसे मृत्यु का भय अविद्वान् तथा विद्वान् सभी को समान रूप से प्रभावित करता है।

६१. ते प्रतिप्रसव हेयाः सूक्ष्माः ॥२।१०॥

पदार्थ :—(ते) वे (प्रतिप्रसव) पुनः पुनः उत्पन्न होने के कारण (हेयाः) त्याज्य हैं (सूक्ष्माः) सूक्ष्म होने पर।

भावार्थ :—ये अविद्यादि क्लेश मूलक वृत्तियाँ सूक्ष्म हो जाने पर भी पुनः पुनः उत्पन्न होने के कारण त्याज्य हैं।

६२. ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः ॥२।११॥

पदार्थ :—(ध्यान हेयाः) ध्यान द्वारा नाश करने योग्य हैं, (तद्वृत्तयः) क्लेश मूलक अविद्या जन्य वृत्तियाँ।

भावार्थ :—क्लेश मूलक अविद्या जन्य वृत्तियों का **स्थूल रूप प्राणायाम** द्वारा तथा सूक्ष्म **रूप अर्थात् तनु अवस्था को प्राप्त रूप ध्यान** द्वारा नाश करने योग्य है।

६३. क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः ॥२।१२॥

पदार्थ :—(क्लेशमूलः कर्माशयः) क्लेशों का मूल कर्म समूह है (दृष्ट अदृष्ट जन्म) वर्तमान तथा पूर्व जन्मों के (वेदनीयः) जानने योग्य तथा भोग्य हैं।

भावार्थ :—अविद्या जन्य क्लेशों का मूल प्रत्यक्ष अर्थात् **वर्तमान** तथा परोक्ष अर्थात् **पूर्व जन्मों** का कर्म समूह है। जो **जानने योग्य** तथा **भोग्य** है।

६४. सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः ॥२।१३॥

पदार्थ :—(सति मूले तद् विपाकः) कर्माशय के विद्यमान रहने से उसका फल (जाति आयुः भोगाः) जन्म जीवन तथा भोग होता रहता है।

भावार्थ :—**कर्माशय** अर्थात् कर्म समूह के विद्यमान रहने तक उसका **विपाक** अर्थात् फल **जन्म जीवन** तथा **भोग** होता रहता है।

कर्माशय **प्रवाह से अनादि** है।

६५. ते ह्लादपरितापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात् ॥२।१४॥

पदार्थ :—(ते) वे जाति, आयु तथा भोग (ह्लाद परिताप फलाः) हर्ष तथा शोक रूप हैं, (पुण्य अपुण्य हेतु त्वात्) पुण्य तथा पाप कर्मों के फल स्वरूप।

भावार्थ :—वे जाति आयु तथा भोग पुण्य **तथा** पाप **कर्मों** के फलस्वरूप प्राप्त होने के कारण हर्ष तथा शोकदायक हैं।

६६. परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः ॥२।१५॥

पदार्थ :—(परिणाम ताप संस्कार दुःखै) परिणामदुःख, तापदुःख तथा संस्कारदुःख (गुण वृत्ति विरोधात्च) गुणों तथा वृत्तियों के परस्पर विरोध के कारण (दुःखम् एव) दुःख रूप हो हैं (सर्व) समस्त कर्माशय (विवेकिनः) विवेकियों के लिये।

भावार्थ :—समस्त कर्माशय, **परिणामदुःख** अर्थात् प्राप्त सुख के अन्त में, सुख का वियोग रूपी परिणामदुःख, **तापदुःख** अर्थात् सुख के बिछुड़ने पर उसका अभाव स्वरूप तापदुःख तथा **संस्कारदुःख** अर्थात् सुख के अभाव में सुख का पुनः स्मरण रूप संस्कारदुःख, **सतोगुण, रजोगुण** तथा **तमोगुण** की परस्पर विरोधी वृत्तियें, **प्रकाश** अर्थात् उत्पन्न होना, **क्रिया** अर्थात् सक्रिय होना, तथा अभाव रूप **निष्क्रियता** विवेकियों के लिये दुख रूप ही हैं।

६७. हेयं दुःखमनागतम् ॥२।१६॥

पदार्थ :—(हेयं दुःखम्) साधन द्वारा नष्ट करने योग्य हैं दुःख (अनागतम्) अप्राप्त।

भावार्थ :—अप्राप्त दुःख योग के साधनों द्वारा नष्ट करने योग्य हैं।

६८. द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः ॥२।१७॥

पदार्थ :—(द्रष्टृ दृश्ययोः) द्रष्टा तथा दर्शनीय पदार्थ का (संयोगः) संयोग (हेयहेतुः) हेय का कारण है।

भावार्थ :—अप्राप्त दुःख ही **हेय है** तथा **द्रष्टा और दृश्य का संयोग** ही हेय का कारण है।

६९. प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम् ॥२।१८॥

पदार्थ :—(प्रकाश क्रिया स्थिति शीलं) प्रकाश, क्रिया, स्थिति रूप स्वभाव वाला, (भूत इन्द्रिय आत्मकं) पञ्च महाभूत तथा दश इन्द्रियात्मक (भोग अपवर्ग अर्थम्) भोग तथा मोक्ष के लिये है (दृश्यम्) यह दृश्यमान् शरीर।

भावार्थ :—सतगुण, रजोगुण तथा तमोगुण के **प्रकाश, क्रिया** तथा **स्थिति रूप स्वभाव वाला पञ्चमहाभूत** पृथिवी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश तथा **दश इन्द्रियात्मक,** नेत्र, श्रोत्र नासिका रसना तथा त्वचा, वाक्, पाणि, पाद, पायु तथा **उपस्थ मय** यह दृश्य रूपी शरीर **भोग** तथा **मोक्ष** के लिये है।

७०. विशेषाविशेषलिङ्गमात्रालिङ्गानि गुणपर्वाणि ॥२।१९॥

पदार्थ :—(विशेष अविशेष) विशेष अर्थात् पञ्च महाभूत, पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ, पञ्च कर्मेन्द्रियाँ तथा मन, अविशेष अर्थात् पञ्च सूक्ष्मभूत तथा अहङ्कार, (लिङ्ग मात्र अलिङ्गानि) लिङ्ग मात्र महत्तत्त्व अर्थात् बुद्धि तथा अलिङ्ग रूप प्रकृति पर्यन्त (गुण पर्वाणि) गुणों का विस्तार है।

भावार्थ :—**विशेष** अर्थात् **पञ्च महाभूत** अर्थात् पृथिवी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश, पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ नेत्र, श्रोत्र, नासिका, रसना तथा त्वचा, पञ्च **कर्मेन्द्रियाँ** वाक्, पाणि, पायु, उपस्थ तथा पाद और मन, **अविशेष** अर्थात् पञ्च सूक्ष्म भूत, शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध और अहङ्कार **लिङ्गमात्र** अर्थात् महत्तत्त्वरूप बुद्धि, **अलिङ्ग** अर्थात् प्रकृति पर्यन्त प्रकाशशील सत, क्रियाशील रज तथा स्थितिशील तम रूप **गुणों का बिस्तार है।**

७१. द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः ॥२।२०॥

पदार्थ :—(द्रष्टा) चेतन स्वरूप जीवात्मा (दृशि मात्रः) द्रष्टा मात्र है (शुद्ध अपि) शुद्ध होते हुये भी (प्रत्यय अनुपश्यः) प्रत्यय रूप बुद्धि के अनुरूप देखता है।

भावार्थ :—चेतन स्वरूप जीवात्मा द्रष्टा मात्र है। शुद्ध होते हुये भी वह बुद्धि के अनुरूप देखता है।

वेद के मतानुसार चेतन स्वरूप जीवात्मा द्रष्टा मात्र न होकर कर्त्ता तथा भोक्ता है। यथा **"तयोरन्यः पिप्पलं स्वादवत्ति" (ऋग्वेद १।१६४।२०)** परम पुरुष से अन्य पुरुष भोक्ता है।

७२. तदर्थ एव दृश्यस्यात्मा ॥२।२१॥

पदार्थ :—(तदर्थ) द्रष्टा के लिये (एव) ही है, (दृश्यस्य) दृश्य का (आत्मा) स्वरूप।

भावार्थ :—यह दृश्य द्रष्टा के भोग तथा मोक्ष प्राप्ति के लिये ही है।

७३. कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वात् ॥२।२२॥

पदार्थ :—(कृतार्थम् प्रति नष्टम्) जिस पुरुष का भोग तथा मोक्ष रूपी अर्थ सिद्ध हो गया है उसके लिये नष्ट हो जाने पर (अपि अनष्टम्) भी नष्ट नहीं हुआ है, (तद् अन्य साधारणत्वात्) वह दृश्य अन्य साधारण लोगों की अपेक्षा से।

भावार्थ :—जिस पुरुष का भोग तथा मोक्ष रूपी अर्थ सिद्ध हो गया है उसके लिये यह दृश्य रूपी जगत् व्यर्थ हो जाने पर भी अन्य साधारण लोगों के लिये अनष्ट अर्थात् विद्यमान् रहता है ।

७४. स्वस्वामिशक्त्योः स्वरूपोपलब्धिहेतुः संयोगः ॥२।२३॥

पदार्थ :—(स्व) दृश्य तथा (स्वामि) द्रष्टा की (शक्त्योः) शक्ति का, (स्वरूप उपलब्धि) स्वरूप की उपलब्धि का (हेतुः) आधार (संयोगः) संयोग है ।

भावार्थ :—दृश्य तथा द्रष्टा का अपनी शक्ति के स्वरूप की प्राप्ति अर्थात् मोक्षार्थ जो आधार है वह संयोग है ।

७५. तस्य हेतुरविद्या ।।२।२४॥

पदार्थ :—(तस्य) उस संयोग का (हेतुः) हेतु (अविद्या) अविद्या है ।

भावार्थ :—उस संयोग का आधार अविद्या है ।

७६. तदभावात्संयोगाभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यम् ॥२।२५॥

पदार्थ :—(तद् अभावात्) उस दृश्य के अभाव से (संयोगा-भावः) संयोग का अभाव (हानम्) हान है, (तद्दृशेः) वह द्रष्टा का (कैवल्यम्) मोक्ष है ।

भावार्थ :—अविद्या जन्य दृश्य के अभाव से उत्पन्न "हान" संज्ञक अवस्था ही द्रष्टा का कैवल्य है ।

७७. विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः ॥२।२६॥

पदार्थ :—(विवेक ख्यातिः) विवेकज विवेकख्याति संज्ञक (अविप्लवा) स्थिर ज्ञान ही (हानोपायः) हान प्राप्ति का आधार है ।

भावार्थ :—स्थिर विवेकख्याति संज्ञक ज्ञान हान संज्ञक स्थिति प्राप्ति का आधार है ।

७८. तस्य सप्तधा प्रान्तभूमिः प्रज्ञा ॥२।२७॥

पदार्थ :—(तस्य) विवेक ख्याति प्राप्त पुरुष की, (सप्तधा) सात प्रकार के (प्रान्त भूमिः प्रज्ञा) स्तर वाली बुद्धि होती है ।

भावार्थ :—हान प्राप्त विवेक ख्याति सम्पन्न पुरुष की बुद्धि ज्ञान की दृष्टि से सात स्तरों वाली होती है ।

१. कार्य विमुक्त प्रज्ञा चार प्रकार की है । :—

अ—ज्ञेय शून्य अवस्था :—जानने योग्य सब जान लिया अर्थात् जानने योग्य कुछ भी शेष नहीं रहा ।

आ—हेय शून्य अवस्था :—द्रष्टा और दृश्य के संयोग के अभाव रूप हान को प्राप्त कर लिया ।

इ - प्राप्य प्राप्यावस्था :—समाधि द्वारा यह प्रतीति कि जो कुछ प्राप्त करना था प्राप्त कर लिया अर्थात् प्राप्तम् प्राप-णीयम् ।

ई—चिकीर्षाशून्य अवस्था :—हान के उपाय रूप विवेक ख्याति को प्राप्त कर लिया ।

२. चित्त विमुक्त प्रज्ञा तीन प्रकार की होती है । :—

अ—चित्त की कृतार्थता :—अर्थात् चित्त का प्रयोजन शेष नहीं रहा ।

आ—गुणलीनता :—कार्य के अभाव में चित्त का अपने कारण रूप गुणों में लीन रहना ।

इ—आत्म स्थिति :—सर्वथा गुणातीत होकर अपने स्वरूप में स्थित रहना ।

७९. योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेक-
ख्यातेः ॥२।२८॥

पदार्थ :—(योग अङ्गान् अनुष्ठानात्) योग के अङ्गों के अनुष्ठान से (अशुद्धि क्षये) अशुद्धि क्षीण होने से (ज्ञान दीप्तिः) ज्ञान का प्रकाश हो जाता है, (आविवेक ख्यातेः) विवेक ख्याति पर्यन्त।

भावार्थ :—योग के अङ्गों के अभ्यास से **मल** रूप शारीरिक अशुद्धि, **विक्षेप** रूप चित्त की अशुद्धि तथा **आवरण** रूप बुद्धि की अशुद्धि क्षीण होकर **विवेकख्याति** पर्यन्त ज्ञान का प्रकाश हो जाता है।

८०. यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यान-
समाधयोऽष्टावङ्गानि ॥२।२९॥

पदार्थ :—(यम नियम आसान प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधयः) यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि (अष्टौ अङ्गानि) आठ अङ्ग हैं।

भावार्थ :—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि **योग के आठ अङ्ग** हैं।

८१. अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ॥२।३०॥

पदार्थ :—(अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य अपरिग्रहा) अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह (यमाः) यम हैं।

भावार्थ :—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह **यम** हैं।

अहिंसा अर्थात् समस्त प्राणियों के प्रति वैर त्याग। **सत्य** अर्थात् वाणी द्वारा यथार्थ भाषण। **अस्तेय** अर्थात् निषिद्ध प्रकार से पराये पदार्थों का न लेना। **ब्रह्मचर्य** अर्थात् उपस्थे-न्द्रिय के संयम द्वारा वीर्य की रक्षा। **अपरिग्रह** अर्थात् विषय भोग विषयक पदार्थों का संचय न करना।

८२. जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा
महाव्रतम् ॥२।३१

पदार्थ :—(जाति देश काल समयात् अवच्छिन्नाः) जाति, देश, काल तथा समय की सीमा से रहित (सार्व भौमा महाव्रतम्) सार्वभौम अर्थात् सब के लिये सर्वत्र एवम् सर्वदा पालनीय महाव्रत हैं।

भावार्थ :—ये **यम** जाति देश काल तथा समय की सीमा से रहित सब के द्वारा सर्वत्र एवम् सर्वदा पालनीय **महाव्रत** हैं।

८३. शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि
नियमाः ॥२।३२॥

पदार्थ :—(शौच, सन्तोष, तपः, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधानानि नियमाः) शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान नियम हैं।

भावार्थ :—शौच सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान **नियम** हैं।

८४. वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम् ॥२।३३॥

पदार्थ :—(वितर्क बाधने) वितर्क द्वारा व्यवधान होने पर, (प्रतिपक्ष भावनम्) प्रतिपक्षीय भावना करे।

भावार्थ :—यम नियमों के पालन करने में **वितर्क अर्थात् विपरीत विचारों द्वारा व्यवधान** होने पर वितर्क के प्रतिपक्षीय विचार पुनः पुनः करे।

८५. वितर्का हिंसादयः कृतकारितानुमोदिता लोभक्रोधमोह-पूर्वका मृदुमध्याधिमात्रा दुःखाज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्षभावनम् ॥२।३४॥

पदार्थ :—(वितर्काः हिंसादयः) वितर्क हिंसादिक (कृत कारित अनुमोदिताः) स्वयं द्वारा की हुई, प्रेरित कर कराई हुई तथा अनुमोदित, (लोभ क्रोध मोह पूर्वकाः) लोभ क्रोध तथा मोह के कारण की गई (मृदु मध्य अधिमात्रा) हल्की मध्यम तथा भारी (दुःख अज्ञान अनन्तफलाः) ये अज्ञान रूप है तथा इनका फल अनन्तदुःख है (इति प्रतिपक्ष भावनम्) ये प्रतिपक्षीय भावनायें हैं।

भावार्थ :—हल्की, मध्यम तथा भारी परिमाण में लोभ क्रोध तथा मोह पूर्वक किये गये, कराये गये अथवा अनुमोदित हिंसादिक वितर्क रूपी बाधाएं हैं। इन अज्ञानमय कार्यों का फल अनन्त दुःख है, उस समय ये प्रतिपक्षीय भावनायें करनी चाहिए।

८६. अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः ॥२।३५॥

पदार्थ :—(अहिंसा प्रतिष्ठायां) अहिंसा की प्रतिष्ठा से (तत् सन्निधौ) योगी के समीपस्थ प्राणी (वैरत्यागः) वैर त्याग देते हैं।

भावार्थ :—जीवन में अहिंसा के प्रतिष्ठित होने पर योगी के समीपस्थ प्राणी परस्पर वैर त्याग देते हैं।

८७. सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् ॥२।३६॥

पदार्थ :—(सत्य प्रतिष्ठायां) सत्य की प्रतिष्ठा से (क्रिया-फलाश्रयत्वम) योगी के द्वारा की गई क्रिया फलयुक्त होती है।

भावार्थ :—जीवन में सत्य के प्रतिष्ठित होने पर योगी के द्वारा की गई क्रिया फलयुक्त होती है।

८८. अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ॥२।३७॥

पदार्थ :—(अस्तेय प्रतिष्ठायां) अस्तेय की प्रतिष्ठा से (सर्व रत्न उपस्थानम) उसे सब प्रकार के रत्न प्राप्त हो जाते हैं।

भावार्थ :—चोरी न करने अर्थात् अन्यों के पदार्थ अनुचित रूप से ग्रहण न करने के विचार दृढ़तापूर्वक स्थिर होने पर योगी को रत्नादिक समस्त ऐश्वर्य प्राप्त हो जाता है।

८९. ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः ॥२।३८॥

पदार्थ :—(ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां) ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा से (वीर्य लाभः) वीर्य अर्थात् बल की वृद्धि होती है।

भावार्थ :—जीवन में ब्रह्मचर्य के प्रतिष्ठित अर्थात् स्थिर होने पर बल की प्राप्ति होती है।

९०. अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथंतासंबोधः ॥२।३९॥

पदार्थ :—(अपरिग्रह स्थैर्ये) अपरिग्रह की स्थिरता से (जन्म कथं ता संबोधः) योगी को वर्तमान जन्म के कारणों का ज्ञान हो जाता है।

भावार्थ :—अपरिग्रह अर्थात् संग्रह न करने की वृत्ति की स्थिरता से योगी को वर्तमान जन्म के कारणों का ज्ञान हो जाता है।

९१. शौचात्स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्गः ॥२।४०॥

पदार्थ :—(शौचात्) शुद्धि का पालन करने से (स्वाङ्ग जुगुप्सा) अपने अङ्गों से घृणा अर्थात् विरक्ति तथा (परैः असंसर्गः) अन्यों से सम्पर्क न रखने की इच्छा उत्पन्न होती है।

भावार्थ :—शौच का पालन करने से विषयोन्मुख अपने अङ्गों से घृणा तथा अन्यों से सम्पर्क न रखने की इच्छा उत्पन्न होती है।

६२. सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शन-योग्यत्वानि च ॥२।४१॥

पदार्थ :—(सत्त्व शुद्धिः) अन्तः करण की शुद्धि (सौमनस्य) मानसिक प्रसन्नता, (एकाग्र्य इन्द्रिय जय) चित्त की एकाग्रता, इन्द्रियों पर अधिकार (आत्म दर्शन योग्य त्वानि च) तथा आत्म दर्शन की योग्यता उत्पन्न होती है।

भावार्थ :—शौच का पालन करने से अन्तःकरण की पवित्रता, मानसिक प्रसन्नता, चित्त की एकाग्रता, इन्द्रियों पर अधिकार तथा आत्म दर्शन की योग्यता उत्पन्न होती हैं।

६३. सन्तोषादनुत्तमसुखलाभः ॥२।४२॥

पदार्थ :—(संतोषात्) संतोष से (अनुत्तम) सर्वोत्तम (सुख लाभः) सुख प्राप्त होता है।

भावार्थ :—संतोष से सर्वोत्तम सुख प्राप्त होता है।

६४. कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः ॥२।४३॥

पदार्थ :—(काय इन्द्रिय सिद्धिः) शरीर तथा इन्द्रियों की सिद्धि सम्पन्न होती है (अशुद्धि क्षयात्) अशुद्धि के क्षीण होने से (तपसः) तप के द्वारा।

भावार्थ :—तप के द्वारा शरीर तथा इन्द्रियों की अशुद्धि क्षीण होने पर शरीर तथा इन्द्रियों की सिद्धियाँ सम्पन्न होती हैं।

उपर्युक्त सूत्र में **तप** से अभिप्राय **प्राणायाम** से है। प्राणायाम द्वारा शारीरिक **मलदोष**, चित्तस्थ **विक्षेप दोष** तथा बुद्धिगत **आवरण दोष** दूर होकर, शारीरिक, इन्द्रियजन्य तथा अन्तःकरण विषयक **समस्त सिद्धियाँ** सम्पन्न होती हैं।

६५. स्वाध्यायादिष्ट देवता सम्प्रयोगः ॥२।४४॥

पदार्थ :—(स्वाध्यायात्) स्वाध्याय से (इष्ट देवता) अभीष्ट देवता आदि विषय की (सम्प्रयोगः) प्राप्ति होती है।

भावार्थ :—स्वाध्याय से अभीष्ट देवता आदि विषय का साक्षात्कार होता है।

६६. समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात् ॥२।४५॥

पदार्थ :—(समाधि सिद्धिः) समाधि सिद्ध होती है, (ईश्वर प्रणिधानात्) ईश्वर के प्रति समर्पण से।

भावार्थ :—दृढ़ ईश्वर निष्ठा से समाधि सिद्ध होती है।

६७. स्थिरसुखमासनम् ॥२।४६॥

पदार्थ :—(स्थिर सुखम् आसनम्) जिसमें स्थिरता तथा सुख हो वह आसन है।

भावार्थ :—बैठने पर जिसमें स्थिरता तथा सुख हो वह आसन है।

६८. प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम् ॥२।४७॥

पदार्थ :—(प्रयत्नशैथिल्यात्) प्रयत्न की शिथिलता से (अनन्त समापत्तिभ्याम्) अनन्त परमात्मा में समाधि सम्पन्न होती है।

भावार्थ :—**आसन की स्थिरता** से शारीरिक प्रयत्न शिथिल होकर **अनन्त परमात्मा में समाधि** सम्पन्न होती है।

९९. ततो द्वन्द्वानभिघातः ॥२।४८॥

पदार्थ :—(ततः) प्रयत्न की शिथिलता द्वारा समाधि सम्पन्न होने से (द्वन्द्व अनभिघातः) शीत उष्ण क्षुधा तृषा आदि द्वन्द्वों से आघात नहीं होता ।

भावार्थ :—प्रयत्न की शिथिलता द्वारा **समाधि** सम्पन्न होने से क्षुधा, तृषा, शीत उष्ण आदि **द्वन्द्वों** द्वारा आघात नहीं लगता है ।

१००. तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः ॥२।४९॥

पदार्थ :—(तस्मिन् सति) आसन के स्थिर होने पर (श्वास प्रश्वासयोः) श्वास प्रश्वास की (गति विच्छेदः) गति का विच्छेद (प्राणायामः) प्राणायाम है ।

भावार्थ :—आसन के स्थिर होने पर श्वास प्रश्वास की गति का विच्छेद करना **प्राणायाम** है ।

१०१. बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः ॥२।५०॥

पदार्थ :—(बाह्य आभ्यन्तर स्तम्भवृत्तिः) बाह्य अर्थात् श्वास को बाहर निकाल कर बाहर रोकना, आभ्यन्तर अर्थात् श्वास को अन्दर लेकर अन्दर रोकना, तथा स्तम्भ वृत्ति अर्थात् श्वास को बाहर निकालने अथवा अन्दर लेते समय यथा स्थिति में रोक देना, (देश काल संख्याभिः) देश, काल तथा संख्या की दृष्टि से (परिदृष्टः) देखा गया है, (दीर्घ सूक्ष्मः) दीर्घ तथा सूक्ष्म ।

भावार्थ :—बाह्य, आभ्यन्तर तथा स्तम्भ वृत्ति प्राणायाम देश, काल तथा संख्या की दृष्टि से दीर्घ तथा सूक्ष्म देखा गया है ।

अ—देश दृष्टः :—प्राणायाम करने के परिणामस्वरूप श्वास प्रश्वास के **देश की सीमा से परिमित** देश दृष्ट है ।

आ—काल दृष्टः :—प्राणायाम करने के परिणाम स्वरूप श्वास प्रश्वास का **समय की सीमा से परिमित** होना काल दृष्ट है ।

इ—संख्या दृष्टः :—प्राणायाम करने के फल स्वरूप श्वास प्रश्वास का **संख्या की सीमा से परिमित** होना संख्या दृष्ट है ।

उपर्युक्त प्राणायाम, प्राणायाम के निरन्तर अभ्यास से **दीर्घ** तथा **सूक्ष्म** होते हैं ।

१. बाह्य वृत्ति प्राणायाम :—श्वास को बल पूर्वक वमनवत् बाहर निकाल कर यथा शक्ति बाहर रोकना बाह्य वृत्ति प्राणायाम है ।

२. आभ्यन्तर वृत्ति प्राणायाम :—श्वास को भीतर लेकर यथा शक्ति भीतर रोकना आभ्यन्तर वृत्ति प्राणायाम है । जब अन्दर न रुक सके तब अत्यन्त मन्द गति से आपूरित श्वास को बाहर निकाल देना ।

३. स्तम्भवृत्ति प्राणायाम :—अन्दर जाते हुये श्वास अथवा बाहर निकलते हुए प्रश्वास को यथाशक्ति वहीं रोके रखना स्तम्भवृत्ति प्राणायाम है ।

बाह्य वृत्ति प्राणायाम के लाभ :—

१. मूलाकुञ्चन की सिद्धि ।
२. नाड़ियों की शुद्धि ।

३. रक्त शुद्धि ।
४. चित्त की शुद्धि तथा एकाग्रता ।
५. प्राणशक्ति पर अधिकार तथा प्राणोत्थान ।
६. स्मरण शक्ति का बढ़ना ।
७. वीर्य का स्तम्भन ।
८. मन में धारणा की योग्यता आना ।

बाह्य वृत्ति प्राणायाम करने की विधि :—

प्रथम दिन बाह्य वृत्ति प्राणायाम **पाँच** से आरम्भ करके शनैः शनैः **इक्कीस पर्यन्त** बढ़ाता जाय। **तीव्र संवेग** युक्त योगी शनैः शनैः **सौ तक** बढ़ाता जाय ।

ध्यान करने से पूर्व दस बाह्य वृत्ति प्राणायाम कर ध्यान करे ।

आभ्यन्तर वृत्ति प्राणायाम के लाभ :—

१. शारीरिक बल की प्राप्ति ।
२. चितस्थ आन्तरिक संस्कारों का शिथिल होना ।
३. पश्चिम मार्ग द्वारा प्राण संरोहण की सिद्धि ।

बाह्य वृत्ति प्राणायाम के सिद्ध होने पर ही आभ्यन्तर प्राणायाम अधिक संख्या में करे ।

मूलाकुञ्चन का सहजरूप में लग जाना बाह्य वृत्ति प्राणायाम की सिद्धि है ।

आभ्यन्तर प्राणायाम की विधि :—

पूर्वोक्त विधि से आभ्यन्तर वृत्ति प्राणायाम प्रथम दिन **पाँच** से आरम्भ कर शनैः शनैः कालान्तर में **इक्कीस पर्यन्त** बढ़ाता जाय ।

तीव्र संवेग युक्त साधक शनैः शनैः कालान्तर में **सौ पर्यन्त** बढ़ाता जाय ।

स्तम्भ वृत्ति प्राणायाम का लाभ :—

चित्त का पूर्णतः एकाग्र होना ।

बाह्यवृत्ति प्राणायाम तथा आभ्यन्तर वृत्ति प्राणायाम के सिद्ध होने पर ही स्तम्भवृत्ति प्राणायाम अधिक संख्या में करे ।

स्तम्भ वृत्ति प्राणायाम की विधि :—

स्तम्भ वृत्ति प्राणायाम पूर्वोक्त विधि से प्रथम दिन **पाँच बार करे ।** शनैः शनैः कालान्तर में **इक्कीस पर्यन्त** बढ़ाता जाय ।

तीव्र संवेग युक्त योगी शनैः शनैः कालान्तर में **सौ पर्यन्त** बढ़ाता जाय ।

१०२. बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः ॥२।५१॥

पदार्थ :—(बाह्य आभ्यन्तर विषय आक्षेपी) बाह्य विषय अर्थात् प्रश्वास, आभ्यन्तर विषय अर्थात् श्वास का परस्परफेंक-कर श्वास प्रश्वास की गति को रोकना (चतुर्थः) चतुर्थ प्राणायाम है ।

भावार्थ :—बाह्य विषय अर्थात् प्रश्वास तथा आभ्यन्तर विषय अर्थात् श्वास को परस्पर फेंक कर श्वास प्रश्वास की गति को रोकना **चतुर्थ प्राणायाम** है ।

बाह्याभ्यन्तर विषयाक्षेपी नामक चतुर्थ प्राणायाम का लाभ :—

प्राण चढ़ाने रूपी प्राण संयमन क्रिया का सिद्ध होना ।

बाह्याभ्यन्तर विषयाक्षेपी प्राणायाम की दो विधियाँ हैं।

१. बाह्याभ्यन्तर प्राणायाम की प्रथम विधि :—

प्रथम बाह्य वृत्ति प्राणायाम के पर्याप्त अभ्यास से चित्त को बाह्य वृत्तियों पर अधिकारकर मूलाकुञ्चन सिद्ध होने पर अधोभाग में स्थित अपानवायु के ऊपर उठने पर नाभिस्थ समान वायु में लय करे। नाभिस्थ समान वायु के ऊपर उठने पर हृदयस्थ प्राण वायु में लय करे। हृदयस्थ प्राण वायु के उठने पर कण्ठस्थ उदान वायु में लय करे। कण्ठस्थ उदान वायु को बल पूर्वक मूलाकुञ्चन द्वारा उठाकर मूर्द्धा प्रदेश में स्थिर करे। प्राण वायु मूर्द्धा प्रदेश में यथा सामर्थ्य धारण कर उतारने की इच्छा होने पर दृढ़ हुये मूलाकुञ्चन को शनैः शनैः खोलते हुये प्राण को यथा स्थान स्थिर करे।

यह पूर्व मार्ग अर्थात् बङ्क नाल मार्ग से प्राण संयमन है।

२. बाह्याभ्यन्तर विषयाक्षेपी प्राणायाम की द्वितीय विधि :

बाह्य वृत्ति प्राणायाम के अभ्यास द्वारा मूलाकुञ्चन सिद्ध होने पर, मूलाकुञ्चन पूर्वक श्वास नाभिस्थ प्रदेश में भर कर स्थिर बैठे। शनैः शनैः प्राण मेरुदण्डस्थ मार्ग अर्थात् पश्चिम मार्ग से उठकर मूर्द्धा प्रदेश में स्थिर हो जायगा। प्राण वायु को यथा सामर्थ्य मूर्द्धा प्रदेश में धारण करे। उतारने की इच्छा होने पर दृढ़ हुये मूलाकुञ्चन को शनैः शनैः खोलते हुये प्राणों को यथा स्थान धारण करे।

उपर्युक्त विधि से पूर्व अथवा पश्चिम मार्ग द्वारा प्राणोत्थान सिद्ध होने पर आश्चर्यजनक आयु तथा अद्भुत सिद्धियाँ स्वतः ही सम्पन्न हो जाती हैं। क्योंकि चित्त का चाञ्चल्य

रूप विघ्न तथा श्वास प्रश्वास रूपी विक्षेप स्वतः ही समाप्त हो जाता है।

१०३. ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् ॥२।५२॥

पदार्थ :—(ततः) प्राणायाम से, (क्षीयते) क्षीण हो जाता है (प्रकाश आवरणम्) प्रकाश का आवरण।

भावार्थ :—प्राणायाम के निरन्तर अभ्यास से **प्रकाश का आवरण क्षीण** हो जाता है।

१०४. धारणासु च योग्यता मनसः ॥२।५३॥

पदार्थ :—(धारणासु च) और धारणाओं में (योग्यता मनसः) मन की योग्यता हो जाती है।

भावार्थ :—तथा मन **धारणाओं में समर्थ** हो जाता है।

१०५. स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ॥२।५४॥

पदार्थ :—(स्वविषय असम्प्रयोगे) अपने विषयों को ग्रहण न कर (चित्त स्वरूपानुकार इव इन्द्रियाणां प्रत्याहारः) इन्द्रियों का चित्त के स्वरूप के तुल्य अनुवर्त्तन प्रत्याहार है।

भावार्थ :—इन्द्रियों का अपने विषयों को ग्रहण न कर चित्त के स्वरूप के तुल्य अनुवर्त्तन **प्रत्याहार** है।

१०६. ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम् ॥२।५५॥

पदार्थ :—(ततः) प्रत्याहार के सम्पन्न होने से (परमावश्यता) परम वशीकार स्थिति हो जाती है, (इन्द्रियाणाम्) इन्द्रियों की।

भावार्थ :—प्रत्याहार के सम्पन्न होने से इन्द्रियों की **परम वशीकार** स्थिति हो जाती है।

॥ इति साधन पादः ॥

विभूति पादः

१०७. देशबन्धश्चित्तस्य धारणा ॥३।१॥

पदार्थ :—(देश बन्धः चित्तस्य धारणा) चित्त का एक देश में बंधना धारणा है।

भावार्थ :—चित्त का शरीर के किसी **एक देश में एकाग्र** होना **धारणा** है।

१०८. तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ॥३।२॥

पदार्थ :—(तत्र प्रत्यय एकतानता) जहाँ चित्त एकाग्र हुआ हो वहाँ निरन्तर स्थिरता (ध्यानम्) ध्यान है।

भावार्थ :—जहाँ चित्त स्थिर हुआ हो वहीं **चित्त की प्रगाढ़ स्थिरता ध्यान** है।

१०९. तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः ॥३।३॥

पदार्थ :—(तद् एव अर्थ मात्र निर्भासं) वह ध्यान में ध्येय की प्रतीति मात्र रहना तथा (स्वरूप शून्यम् इव समाधिः) स्वरूप का शून्यवत हो जाना समाधि है।

भावार्थ :—ध्यान की अवस्था में ध्याता को **ध्येय की प्रतीति** मात्र रहना तथा **स्वरूप का शून्यवत्** हो जाना **समाधि** है।

चित्त का **ध्येय में एकाग्र होना धारणा** है। चित्त की **ध्येय में प्रगाढ़ एकाग्रता ध्यान** है। चित्त का **ध्येय में स्थिर रूप से निरुद्ध होना तथा आत्मविस्मृति समाधि** है।

११०. त्रयमेकत्र संयमः ॥३।४॥

पदार्थ :—(त्रयम एकत्र संयमः) तीनों अर्थात् धारणा ध्यान तथा समाधि का एक विषय में सम्पन्न होना संयम है।

भावार्थ :—**धारणा ध्यान तथा समाधि का एक विषय में सम्पन्न होना संयम है।**

संयम उपासना का नौवाँ अङ्ग है।

१११. तज्जयात्प्रज्ञालोकः ॥३।५॥

पदार्थ :—(तत् जयात्) संयम के जय से (प्रज्ञाल्लोकः) बुद्धि प्रकाशमय हो जाती है।

भावार्थ :—**संयम** के जय से **बुद्धि प्रकाश युक्त** हो जाती है।

११२. तस्य भूमिषु विनियोगः ॥३।६॥

पदार्थ :—(तस्य) संयम का (भूमिषु) विभिन्न भूमियों में (विनियोगः) विनियोग होता है।

भावार्थ :—संयम का विभिन्न भूमियों में विनियोग होता है। **(वस्तुतः प्रकाशवती बुद्धि का संयम द्वारा विभिन्न भूमियों में विनियोग होता है।)**

११३. त्रयमन्तरङ्गं पूर्वेभ्यः ॥३।७॥

पदार्थ :—(त्रयम् अन्तरङ्गं) धारणा, ध्यान तथा समाधि अन्तरङ्ग साधन हैं, (पूर्वेभ्यः) पूर्वोक्त यम नियमादि की अपेक्षा से।

भावार्थ :—पूर्वोक्त यम, नियम, आसन, प्राणायाम तथा प्रत्याहार की अपेक्षा से धारणा, ध्यान तथा समाधि अन्तरङ्ग साधन हैं।

११४. तदपि बहिरङ्गं निर्बीजस्य ॥३।८॥

पदार्थ :—(तदपि बहिरङ्गं निर्बीजस्य) तथापि निर्बीज समाधि की अपेक्षा से धारणा, ध्यान तथा समाधि बहिरङ्ग साधन हैं।

भावार्थ :—**निर्बीज समाधि की अपेक्षा से** धारणा, ध्यान तथा समाधि बहिरङ्ग साधन हैं।

११५. व्युत्थाननिरोधसंस्कारयोरभिभवप्रादुर्भावौ निरोधक्षणचित्तान्वयो निरोधपरिणामः ॥३।९॥

पदार्थ :—(व्युत्थान निरोध संस्कारयोः) व्युत्थान और निरोध के संस्कारों का (अभिभवप्रादुर्भावौ) तिरोभाव तथा प्रादुर्भावों में (निरोध क्षण चित्तान्वयः) चित्त का निरोध काल रूपी आश्रय (निरोध परिणामः) निरोध परिणाम है।

भावार्थ :—चित्त में विद्यमान् संस्कारों के फल स्वरूप समाधि अवस्था में चञ्चलता और निरोध का प्रादुर्भाव तथा तिरोभाव होता रहता है। उस समय चित्त की निरुद्धावस्था में जो परिणाम होता है, वह **निरोध परिणाम** है।

११६. तस्य प्रशान्तवाहिता संस्कारात् ॥३।१०॥

पदार्थ :—(तस्य) चित्त की (प्रशान्त वाहिता) प्रशान्त वाहिता स्थिति होती है, (संस्कारात्) निरोध परिणाम युक्त संस्कारों से।

भावार्थ :—उस समाधि अवस्था में निरोध परिणाम युक्त संस्कारों के कारण **प्रशान्त वाहिता** स्थिति होती है।

११७. सर्वार्थतैकाग्रतयोः क्षयोदयौ चित्तस्य समाधिपरिणामः ॥३।११॥

पदार्थ :—(सर्वार्थता एकाग्रतयोः क्षय उदयौ चित्तस्य) सब प्रकार के विषयों के चिन्तन की वृत्ति का क्षय होकर, चित्त में एकाग्रता का उदय होना (समाधि परिणामः) समाधि परि-**णाम** है।

भावार्थ :—सब प्रकार के विषयों के चिन्तन की वृत्ति का क्षय होकर चित्त में एकाग्रता का उदय होना **समाधि परिणाम** है।

११८. ततः पुनः शान्तोदितौ तुल्यप्रत्ययौ चित्तस्यैकाग्रता-परिणामः ॥३।१२॥

पदार्थ :—(ततः पुनः) उसके पश्चात् पुनः (शान्त उदितौ) शान्त तथा उदय होने वाली दोनों वृत्तियाँ (तुल्यप्रत्ययौ) तुल्य आश्रय वाली हो जाती हैं (चित्तस्य एकाग्रता परिणामः)। यह चित्त का एकाग्रता परिणाम है।

भावार्थ :—समाधि सम्पन्न चित्त की शान्त तथा उदय होने वाली दोनों वृत्तियाँ समान हो जाती हैं। यह चित्त का **एकाग्रता परिणाम** है।

११९. एतेन भूतेन्द्रियेषु धर्मलक्षणावस्थापरिणामा व्याख्याताः ॥३।१३॥

पदार्थ :—(एतेन) इनके अर्थात् निरोधपरिणाम, समाधि-परिणाम तथा अवस्थापरिणाम के द्वारा (भूत इन्द्रियेषु) पञ्च

महाभूतों तथा इन्द्रियों में होने वाले, (धर्म लक्षण अवस्था परिणामा व्याख्याताः) धर्म परिणाम, लक्षण परिणाम तथा अवस्था परिणाम कहे गये हैं।

भावार्थ :—निरोध परिणाम, समाधि परिणाम तथा एकाग्रता परिणाम के द्वारा, पञ्च महाभूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि वायु, आकाश) तथा इन्द्रियों (नेत्र, श्रोत्र, नासिका, रसना तथा त्वचा; वाणी, हाथ, पैर, उपस्थ तथा गुदा) में होने वाले, **धर्म-परिणाम, लक्षण परिणाम** तथा **अवस्था परिणाम** कहे गये हैं।

अ—धर्म परिणाम :—एक धर्म के लय होने पर दूसरे धर्म का उदय होना धर्म परिणाम है। धर्म परिणाम में धर्मी के धर्म का परिवर्त्तन होता है।

आ—लक्षण परिणाम :—लक्षण परिणाम धर्म परिणाम के साथ-साथ होता है। एक धर्म के लय के साथ उसके लक्षणों का लय होकर दूसरे धर्म के उदय के साथ उसके लक्षणों का उदय लक्षण परिणाम है। लक्षण परिणाम में धर्म का लक्षण बदलता है। लक्षण परिणाम, धर्म परिणाम से सूक्ष्म है।

इ—अवस्था परिणाम :—जो वर्तमान लक्षण युक्त धर्म में प्रतिक्षण परिवर्त्तन होकर नयापन आता है तथा नयापन समयान्तर के साथ पुराना होकर अतीत में विलीन हो जाता है। यही अवस्था परिणाम है। अवस्था परिणाम में धर्म के वर्तमान लक्षण रहते हुये भी उसकी अवस्था बदलती रहती है। लक्षण परिणाम, अवस्था परिणाम से सूक्ष्म है।

१२०. शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मानुपाती धर्मी ॥३।१४॥

पदार्थ :—(शान्त उदित अव्यपदेश्य) शान्त उदित तथा अनागत (धर्म अनुपाती धर्मी) जो धर्म हैं उनसे युक्त धर्मी है।

भावार्थ :—द्रव्य में रहने वाली शक्तियों का नाम धर्म है। जिसमें भूत, भविष्य तथा वर्तमान की संस्कार युक्त सामर्थ्य विद्यमान है तथा जो इसका अनुसरण कर्त्ता है, वह धर्मी है।

उपर्युक्त तीन परिणाम **धर्मी के धर्म की अवस्थाओं के** अनुसार हैं।

१२१. क्रमान्यत्वं परिणामान्यत्वे हेतुः ॥३।१५॥

पदार्थ :—(क्रम अन्यत्वं परिणाम अन्यत्वे हेतुः) परिणाम की भिन्नता में क्रम की भिन्नता हेतु है।

भावार्थ :—परिणाम की भिन्नता में क्रम की भिन्नता हेतु है।

१२२. परिणामत्रयसंयमादतीतानागतज्ञानम् ॥३।१६॥

पदार्थ :—(परिणाम त्रय संयमात्) परिणाम त्रय में संयम करने से (अतीत अनागत ज्ञानम्) भूत तथा भविष्य का ज्ञान होता है।

भावार्थ :— **धर्म परिणाम, लक्षण परिणाम** तथा **अवस्था परिणाम** इन तीनों में **संयम** करने से **भूत** तथा **भविष्य का ज्ञान** होता है।

१२३. शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासात् संकरस्तत्प्रविभाग-संयमात्सर्वभूतरुतज्ञानम् ॥३।१७॥

पदार्थ :—(शब्द अर्थ प्रत्ययानाम्) शब्द अर्थ तथा ज्ञान (इतरेतर अध्यासात् संकरः) इन तीनों का एक में दूसरे का अध्यास हो जाने के कारण जो मिश्रण हो रहा है, (तत्प्रविभाग संयमात्) उसके विभाग में संयम करने से (सर्वभूत रुत ज्ञानम्) समस्त प्राणियों की बोली का ज्ञान हो जाता है।

भावार्थ : समस्त प्राणियों के वर्ण तथा शब्दों के उच्चारण में परस्पर ध्वन्यात्मक अन्तर है। ये सब उच्चारण परस्पर एक दूसरे में मिले हुये से हैं। इनकी पारस्परिक भिन्नता में संयम करने से **समस्त प्राणियों की बोली का ज्ञान** हो जाता है।

१२४. संस्कारसाक्षात्करणात्पूर्वजातिज्ञानम् ॥३।१८॥

पदार्थ :—(संस्कार साक्षात्करणात) संयम द्वारा चित्तस्थ संस्कारों का साक्षात् करने से (पूर्व जाति ज्ञानम्) पूर्व जन्म का ज्ञान हो जाता है।

भावार्थ :—चित्त में समस्त संस्कारों का संग्रह रहता है। प्रथम **वासना रूप**, द्वितीय **विपाक रूप** जिनका फल **जाति आयु** तथा **भोग** है। चित्तस्थ **विपाक संस्कारों का संयम** द्वारा साक्षात् करने से **पूर्व** जन्म का ज्ञान हो जाता है।

१२५. प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम् ॥३।१९॥

पदार्थ :—(प्रत्ययस्य) दूसरे के चित्त में अपने चित्त द्वारा संयम कर साक्षात् करने से (पर चित्त ज्ञानम्) योगी को दूसरे के चित्त का ज्ञान हो जाता है।

भावार्थ :—अपने चित्त द्वारा **दूसरे के चित्त में संयम** द्वारा साक्षात् करने से योगी को **दूसरे के चित्त का ज्ञान** हो जाता है।

१२६. न च तत्सालम्बनं तस्याविषयीभूतत्वात् ॥३।२०॥

पदार्थ :—(न च तत् सालम्बनम्) किन्तु नहीं होता, उसके आलम्बन का ज्ञान (तस्य अविषयी भूतत्वात्) उसका विषय न होने के कारण।

भावार्थ :—अपने चित्त द्वारा दूसरे के चित्त में संयम करने से योगी को **चित्तस्थ संस्कारों का ज्ञान** तो हो जाता है, परन्तु

उन संस्कारों के आधार का ज्ञान उनका विषय न होने के कारण नहीं होता।

१२७. कायरूपसंयमात्तद्ग्राह्यशक्तिस्तम्भे चक्षुःप्रकाशासम्प्रयोगेऽन्तर्धानम् ॥३।२१॥

पदार्थ :—(काय रूप संयमात्) शरीर के रूप में संयम कर (तद् ग्राह्य शक्ति स्तम्भे) उसकी रूप ग्रहण करने की शक्ति को रोक लेने से (चक्षुः प्रकाश असम्प्रयोगे) नेत्रों से प्रकाश का सम्बन्ध न रहने के कारण (अन्तर्धानम्) अन्तर्धान होता है।

भावार्थ :—**शरीर के रूप में संयम** करने से नेत्रों का प्रकाश से सम्बन्ध न रहने के कारण रूप ग्रहण करने की शक्ति का निरोध होने से **योगी अन्यों को दिखाई नहीं देता** है।

१२८. सोपक्रमं निरुपक्रमं च कर्म तत्संयमादपरान्तज्ञानमरिष्टेभ्यो वा ॥३।२२॥

पदार्थ :—(स उपक्रमम्) उपक्रम सहित (निः उपक्रमम् च) तथा उपक्रम रहित (कर्म) कर्म हैं (तत् संयमात्) उनमें संयम करने से (अपरान्त ज्ञानम्) मृत्यु का ज्ञान हो जाता है, (अरिष्टेभ्यः वा) अथवा अरिष्टों द्वारा मृत्यु का ज्ञान हो जाता है।

भावार्थ :—आयु विषयक कर्म दो प्रकार के हैं। **उपक्रम सहित** कर्म अर्थात् शीघ्र फल देने वाले कर्म तथा **उपक्रम रहित** कर्म अर्थात् विलम्ब से फल देने वाले कर्म। उन उपक्रम सहित तथा उपक्रम रहित कर्मों में संयम करने से **मृत्यु का ज्ञान** हो जाता है। अथवा **अरिष्टों** से मृत्यु का ज्ञान हो जाता है।

अरिष्ट तीन प्रकार के हैं।

अ—**आध्यात्मिक अरिष्ट** :—कान बन्द करने पर शरीर के अन्दर होने वाले शब्दों का सुनाई न देना। नेत्र बन्द करने पर आन्तरिक प्रकाश का दिखाई न देना आदि।

आ—**आधिभौतिक अरिष्ट** :—स्वप्नावस्था में भयानक आकृति वाले पुरुषों को देखना। स्वप्न में मृत पुरुषों का देखना।

इ—**आधिदैविक अरिष्ट** :—स्वप्नावस्था में सुखदायक अथवा दुःखदायक दृश्यों का दिखाई देना।

अरिष्टों द्वारा सामान्य व्यक्तियों को भी अपनी **मृत्यु का पूर्वाभास** हो जाता है परन्तु यह ज्ञान संशय पूर्ण होता है। जब कि योगी का यह ज्ञान निश्चित होता है।

१२९. मैत्र्यादिषु बलानि ॥३।२३॥

पदार्थ :—(मैत्री आदिषु) मैत्री आदि भावनाओं में संयम करने से (बलानि) बलों की प्राप्ति होती है।

भावार्थ :—मैत्री, करुणा तथा मुदिता नामक भावनाओं में संयम करने से **मैत्री, करुणा तथा मुदिता** नामक बल प्राप्त होता है।

१३०. बलेषु हस्तिबलादीनि ॥३।२४॥

पदार्थ :—(बलेषु) बलों में संयम करने से (हस्ति बल आदीनि) हाथी आदि बलशाली प्राणियों के तुल्य बल प्राप्त होता है।

भावार्थ :—बलों में संयम करने से **हाथी आदि बलशाली** प्राणियों के समान बल प्राप्त होता है।

विधि :—सर्व प्रथम दृढ़ मूलाकुञ्चन पूर्वक वाह्य वृत्ति तथा आभ्यन्तर वृत्ति प्राणायाम सिद्ध होने के पश्चात् मुख अथवा नासा छिद्रों से प्राणों को शनैः शनैः ग्रास वत् स्वल्प विराम पूर्वक यथा सामर्थ्य ग्रहण करता जाय। ग्रहण करने की शक्ति न रहने पर अत्यन्त मन्द गति से बाहर निकाल दे। पुनः पूर्व-वत् करे।

इस प्रकार प्रथम दिन **पाँच** बार से आरम्भ कर शनैः शनैः यथा सामर्थ्य बढ़ाता जाय। **सौबार** प्रतिदिन करने की क्षमता होने पर अद्भुत बल प्राप्त होता है।

इस क्रिया के करने में **असावधानी** तथा **शीघ्रता** नहीं करनी चाहिये।

१३१. प्रवृत्त्यालोकन्यासात्सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्ट-ज्ञानम् ॥३।२५॥

पदार्थ :—(प्रवृत्ति आलोक न्यासात्) ज्योतिष्मती प्रवृत्ति से उत्पन्न प्रकाश के संयोग से (सूक्ष्म व्यवहित विप्रकृष्ट ज्ञानम्) सूक्ष्म, गुप्त तथा उत्तम अर्थों का भी ज्ञान हो जाता है।

भावार्थ :—ज्योतिष्मती प्रवृत्ति से उत्पन्न प्रकाश के संयोग से **सूक्ष्म**, **गुप्त** तथा **उत्तम अर्थों** का भी ज्ञान हो जाता है।

१३२. भुवनज्ञानम् सूर्ये संयमात् ॥३।२६॥

पदार्थ :—(भुवन ज्ञानम्) समस्त लोकों का ज्ञान हो जाता है, (सूर्ये संयमात्) सूर्य में संयम करने से।

भावार्थ :—ज्योतिष्मती प्रवृत्ति के उत्पन्न होने पर **सूर्य में संयम** करने से **समस्त लोकों** का ज्ञान हो जाता है।

१३३. चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम् ॥३।२७॥

पदार्थ :—(चन्द्रे) चन्द्रमा में संयम करने से (तारा व्यूह ज्ञानम्) तारा मण्डल का ज्ञान हो जाता है।

भावार्थ :—ज्योतिष्मती प्रवृत्ति के उत्पन्न होने पर **चन्द्रमा में संयम** करने से **तारा मण्डल का ज्ञान** हो जाता है।

सूर्य मण्डल में संयम समस्त लोकों के जानने का माध्यम है तथा चन्द्रमा में संयम तारा मण्डल के जानने का आधार है।

१३४. ध्रुवे तद्गतिज्ञानम् ॥३।२८॥

पदार्थ :—(ध्रुवे) ध्रुव में संयम करने से (तत् गति ज्ञानम्) ताराओं की गति का ज्ञान हो जाता है।

भावार्थ :—**ध्रुव में संयम** करने से **ताराओं की गति** का ज्ञान हो जाता है।

१३५. नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम् ॥३।२९॥

पदार्थ :—(नाभि चक्रे) नाभि चक्र में संयम करने से (काय व्यूह ज्ञानम्) शारीरिक रचनात्मक समूह का ज्ञान हो जाता है।

भावार्थ :—नाभि चक्र में संयम करने से **शारीरिक रचनात्मक समूह** का ज्ञान हो जाता है।

१३६. कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः ॥३।३०॥

पदार्थ :—(कण्ठकूपे) कण्ठ के अधर में स्थित कूप में संयम करने से (क्षुत्पिपासा निवृत्तिः) भूख तथा प्यास निवृत्त हो जाती है।

भावार्थ :—कण्ठ के अधर में स्थित कूप में संयम करने से **भूख तथा प्यास** निवृत्त हो जाती है।

१३७. कूर्मनाड्यां स्थैर्यम् ॥३।३१॥

पदार्थ :—(कूर्म नाड्यां) कूर्म नाड़ी में संयम करने से (स्थैर्यम्) स्थिरता प्राप्त होती है।

भावार्थ :—कण्ठ कूप के नीचे स्थित कूर्म नाड़ी में संयम करने से **स्थिरता** प्राप्त होती है।

१३८. मूर्द्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम् ॥३।३२॥

पदार्थ :—(मूर्द्ध ज्योतिषि) मूर्द्धा स्थित ज्योति में संयम करने से (सिद्ध दर्शनम्) सिद्ध पुरुषों के दर्शन होते हैं।

भावार्थ :—मूर्द्धा स्थित ज्योति में संयम करने से सिद्ध पुरुषों के दर्शन होते हैं।

१३९. प्रातिभाद्वा सर्वम् ॥३।३३॥

पदार्थ :—(प्रातिभात् वा) अथवा प्रातिभज्ञान उत्पन्न होने पर (सर्वम्) सब ज्ञान स्वतः ही हो जाता है।

भावार्थ :—विवेक द्वारा ज्ञेय को सहज रूप में जानने की योग्यता का नाम **प्रातिभ ज्ञान** है। प्रातिभ ज्ञान उत्पन्न होने पर समस्त ज्ञेय विषयों का **ज्ञान स्वतः** ही हो जाता है।

१४०. हृदये चित्तसंवित् ॥३।३४॥

पदार्थ :—(हृदये) हृदय में संयम करने से (चित्त संवित्) **चित्त का ज्ञान** हो जाता है।

भावार्थ :—**हृदय में संयम** करने से **चित्त का ज्ञान** हो जाता है।

१४१. सत्त्वपुरुषयोरत्यन्तासंकीर्णयोः प्रत्ययाविशेषो भोगः परार्थत्वात् स्वार्थसंयमात्पुरुषज्ञानम् ॥३।३५॥

पदार्थ :—(सत्त्व पुरुषयः अत्यन्त असंकीर्णयोः) बुद्धि तथा पुरुष की अत्यन्त भिन्नता है (प्रत्यय अविशेषः भोगः) इन दोनो का अभेद परक ज्ञान भोग है (परार्थत्वात् स्वार्थ संयमात्) इस परार्थरूप अभेदपरक ज्ञान से भिन्न स्वार्थ में संयम करने से (पुरुष ज्ञानम्) पुरुष का ज्ञान होता है।

भावार्थ :—**बुद्धि** तथा **पुरुष** परस्पर अत्यन्त भिन्न हैं। इन का **अभेदपरक ज्ञान** भोग अर्थात् **परार्थ** है। इस परार्थ संज्ञक भोग से भिन्न बुद्धि तथा पुरुष की भिन्नता परक ज्ञान **स्वार्थ** है। परार्थ से भिन्न **स्वार्थ में संयम** करने से **पुरुष का ज्ञान** होता है।

१४२. ततः प्रातिभश्रावणवेदनादर्शास्वादवार्ता जायन्ते ॥३।३६॥

पदार्थ :—(ततः) उससे अर्थात् स्वार्थ में संयम करने से (प्रातिभ श्रावण वेदना दर्शा स्वाद वार्ता जायन्ते) प्रातिभ ज्ञान, दिव्य शब्दों का सुनना, दिव्य स्पर्श, दिव्य दर्शन, दिव्य रसास्वादन तथा दिव्य गन्ध ग्रहण उत्पन्न होते हैं।

भावार्थ :—स्वार्थ में संयम करने से **प्रातिभ ज्ञान, दिव्य शब्दों** का सुनना, **दिव्य स्पर्श, दिव्य दर्शन, दिव्य रसास्वादन** तथा **दिव्य गन्ध** ग्रहण उत्पन्न होते हैं।

१४३. ते समाधावुपसर्गाव्युत्थाने सिद्धयः ॥३।३७॥

पदार्थ :—(ते) वे प्रातिभ ज्ञान आदि उपर्युक्त सिद्धियां (समाधौ उपसर्गाः) समाधि में विघ्न हैं (व्युत्थाने सिद्धयः) व्युत्थान अर्थात् व्यवहार काल में सिद्धि हैं।

भावार्थ :—प्रातिभ ज्ञान आदि सिद्धियां समाधि में **विघ्न** तथा व्युत्थान अर्थात् व्यवहार काल में **सिद्धि** हैं।

१४४. बन्धकारणशैथिल्यात्प्रचारसंवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः ॥३।३८॥

भावार्थ—(बन्ध कारण शैथिल्यात्) बन्ध का कारण शिथिल होने से (प्रचार संवेदनात् च) तथा जाने आने के माध्यम का ज्ञान होने से (चित्तस्य परशरीर आवेशः) चित्त का दूसरे के शरीर में प्रवेश होता है।

भावार्थ :—जीवात्मा का शरीर में बन्धन का कारण **वासना** है। **वासनाओं के शिथिल** होने तथा चित्त के आने जाने के आधार **प्राणों की गमनागमन** प्रक्रिया को व्यवहारिक रूप में जान लेने पर **चित्त का अन्य शरीर में प्रवेश** होता है। यह **कल्पिता वृत्ति** है।

यह परकाया प्रवेश की प्रक्रिया है।

विधि :—मूलाकुञ्चन पूर्वक बाह्यवृत्ति प्राणायाम के अभ्यास से वासनाओं के शिथिल होने पर, बाह्यवृत्ति प्राणायाम की सिद्धि के फलस्वरूप दृढ़ हुये मूलाकुञ्चन के कारण अपान अपने स्थान से उठकर नाभिस्थ समान में लय हो जाता है। नाभिस्थ समान उठकर हृदयस्थ प्राण में लय हो जाता है। हृदयस्थ प्राण उठकर कण्ठस्थ उदान में लय हो जाता है। कण्ठस्थ उदान उठकर मूर्द्धा में प्रवेश कर स्थित हो जाता है। उस समय योगी चित्त द्वारा अभीप्सित शरीर में संयम करने पर उस शरीर में प्रवेश कर सकता है तथा पुनः संयम द्वारा अपने शरीर में प्रवेश कर सकता है।

१४५. उदानजयाज्जलपङ्ककण्टकादिष्वसङ्ग उत्क्रान्तिश्च ॥३।३९॥

पदार्थ :—(उदान जयात्) उदान जय से जल पङ्क कण्टकादिषु) जल, कीचड़ तथा काँटों से (असङ्ग उत् क्रान्तिः च) असङ्ग रहकर मृत्यु के समय प्राणों के प्रयाण की गति पर अधिकार कर लेता है।

भावार्थ :—**उदान वायु के जय** से शरीर के अत्यन्त हल्का होने के कारण योगी, **जल, कीचड़** तथा **कण्टकादि** के स्पर्श से पृथक् रहकर प्राणों की उर्ध्व गति तथा वासनायाम की शिथिलता के कारण **स्वेच्छा मृत्यु** की योग्यता प्राप्त कर प्राण त्याग के समय शरीर के **ऊपरी भाग से प्राण विसर्जन** करता है।

शरीरस्थ प्राण के शरीर में विभिन्न स्थानों पर रहकर विभिन्न क्रिया कलापों के कारण पाँच भिन्न-भिन्न नाम हैं।

अ—प्राण :—नासिका तथा मुख से श्वास प्रश्वास द्वारा आता जाता हुआ हृदय प्रदेश में रहता है।

आ—अपान :—नाभि के नीचे के प्रदेश में रहकर मल-मूत्रादि विसर्जन करता है।

इ—समान :— प्राण तथा अपान में समता बनाये रख कर नाभि प्रदेश स्थित रहकर अन्न का पाचन करते हुये रस को समस्त शरीर में पहुँचाता है।

ई—उदान :—कण्ठ से सिर पर्यन्त भाग में रहकर अन्न जलादि ग्रहण करता है।

उ—व्यान :—समस्त शरीर में व्यापक रहता है।

मृत्यु के समय प्राणी अपने स्वभावानुसार तीन भिन्न-भिन्न स्थानों से प्राणों का विसर्जन करता है।

कामासक्त प्राणियों के प्राण मृत्यु के समय अपान के आश्रय से **गुदा मार्ग** से निकलते हैं। उस समय उसका **मल मूत्रादि विसर्जित** हो जाता है।

रसासक्त बहु भाषी प्राणियों के प्राण मृत्यु के समय उदान के आश्रय से **मुख** से निकलते हैं। उस समय उसका **मुख खुला** रह जाता है।

रूपासक्त एवम् चिन्तन शील प्राणियों के प्राण मृत्यु के समय उदान के आश्रय से **नेत्रों** से निकलते हैं। उस समय उनके **नेत्र खुले** रह जाते हैं।

सामान्य प्राणियों के मृत्यु के समय प्राण विसर्जन के यही तीन स्थान हैं।

प्राणों की उत्क्रान्त्यावस्था के कारण **उदान जयी योगी जनों** के प्राण मृत्यु के समय उदान के आश्रय से तालु के ऊपर स्थित **ब्रह्म रन्ध्र** से निकलते हैं। ब्रह्मरन्ध्र से भिन्न शिखा प्रदेश का नाम मूर्धा है।

१४६. समानजयाज्ज्वलनम् ॥३।४०॥

पदार्थ :—(समान जयात्) समान वायु के जय से (ज्वलनम्) अग्नि के समान दीप्तिमान हो जाता है।

भावार्थ :—**समान वायु के जय** से योगी का शरीर **अग्नि के समान दीप्तिमान** हो जाता है।

१४७. श्रोत्राकाशयोः सम्बन्धसंयमाद्दिव्यं श्रोत्रम् ॥३।४१॥

पदार्थ :—(श्रोत्र आकाशयोः) श्रोत्र तथा आकाश के (सम्बन्ध संयमात्) पारस्परिक सम्बन्ध में संयम करने से (दिव्यं श्रोत्रम्) दिव्य शब्द सुनाई देते हैं।

भावार्थ :—श्रोत्र तथा आकाश के पारस्परिक सम्बन्ध में संयम करने से **दिव्य शब्द** सुनाई देते हैं ।

१४८. कायाकाशयोः संबन्धसंयमाल्लघुतूलसमापत्तेश्चा-काशगमनम् ॥३।४२॥

पदार्थ :—(काय आकाशयोः) काया तथा आकाश के पारस्परिक (सम्बन्ध संयमात्) सम्बन्ध में संयम करने से (लघु तूल समापत्तेः च) तथा रुई वत् हल्के पदार्थों में चित के समाहित करने पर योगी (आकाश गमनम्) आकाश में गमन करता है ।

भावार्थ :—काया तथा आकाश के पारस्परिक सम्बन्ध में संयम करने तथा रुई के समान हल्के पदार्थों में चित्त के समाहित करने पर योगी **आकाश में गमन** करता है ।

१४९. बहिरकल्पिता वृत्तिर्महाविदेहा ततः प्रकाशावरणक्षयः ॥३।४३॥

पदार्थ :—(बहिः अकल्पिता वृत्तिः महाविदेहा) मन के अकल्पित रूप से शरीर से बाहर रहने की वृत्ति महाविदेहा है (ततः प्रकाश आवरण क्षयः) उस महाविदेहा वृत्ति से प्रकाश का आवरण क्षय हो जाता है ।

भावार्थ :—भावना द्वारा मन के शरीर से बाहर रहने की वृत्ति कल्पिता वृत्ति है । अकल्पिता वृत्ति अर्थात् स्वाभाविक रूप से मन के शरीर से बाहर रहने की वृत्ति महाविदेहा है । **महाविदेहा वृत्ति से प्रकाश का आवरण** क्षीण हो जाता है ।

१५०. स्थूलस्वरूपसूक्ष्मान्वयार्थवत्त्वसंयमाद्भूतजयः ॥३।४४॥

पदार्थ :—(स्थूल, स्वरूप, सूक्ष्म, अन्वय, अर्थवत्त्व) भूतों की स्थूल अवस्था, स्वरूप, सूक्ष्मावस्था, अन्वय तथा अर्थवत्त्व अर्थात् प्रयोजन में (संयमात् भूत जयः) संयम करने से पृथिवी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश पर जय होता है ।

भावार्थ :—पञ्च महाभूतों के **स्थूल रूप** (पृथिवी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश), **स्वरूप** (मूर्त्ति अथवा आकार, आर्द्रता, दाहकता तथा प्रकाश, गति तथा कम्पन, व्यापकता तथा अवकाश) **सूक्ष्म** (गन्ध, रस, रूप, स्पर्श तथा शब्द) **अन्वय** (रूप का प्राकट्य तथा प्रकाश, क्रिया तथा स्थिति), **अर्थवत्त्व** (अर्थात् भोग तथा मोक्ष) में संयम करने से **भूत जय** होता है ।

१५१. ततोऽणिमादि प्रादुर्भावः कायसम्पत्तद्धर्मान-भिघातश्च ॥३।४५॥

पदार्थ :—(ततः) उससे अर्थात् भूत जय से (अणिमादि प्रादुर्भावः) अणिमादि सिद्धियों का उत्पन्न होना (काय सम्पत्) शारीरिक ऐश्वर्य की प्राप्ति तथा (तत् धर्म अनभिघातः च) पञ्च महाभूतों के स्वभाव से बाधा नहीं रहती है ।

भावार्थ :—**भूत जय से** अणिमा, गरिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व तथा वशित्व **सिद्धियाँ** उत्पन्न होकर, शारीरिक ऐश्वर्य से सम्पन्न हो जाता है तथा उसे **पञ्च महाभूतों के स्वभाव से बाधा** नहीं होती है ।

१५२. रूपलावण्यबलवज्रसंहननत्वानि कायसम्पत् ॥३।४६॥

पदार्थ :—(रूप, लावण्य, बल, वज्र संहननत्वानि) दर्शनीय रूप, कान्ति, बल तथा वज्र के समान अछेद्य दृढ़ता (काय सम्पत्) कायसम्पत् है ।

भावार्थ :—दर्शनीय रूप, दीप्तिमान कान्ति, बल तथा वज्र के समान अछेद्य दृढ़ता **कायसम्पत्** है।

१५३. ग्रहणस्वरूपास्मितान्वयार्थवत्त्वसंयमादिन्द्रियजयः ॥३।४७॥

पदार्थ :—(ग्रहण, स्वरूप, अस्मिता, अन्वय, अर्थवत्त्व) ग्रहण, स्वरूप, अस्मिता, अन्वय तथा अर्थवत्त्व में (संयमात् इन्द्रिय जयः) संयम करने से इन्द्रिय जय होता है।

भावार्थ :—इन्द्रियों द्वारा विषयों को ग्रहण करने की वृत्ति **ग्रहण** है। मन द्वारा विषयों का चिन्तन **स्वरूप** है। द्रष्टा और दर्शनशक्ति की एकात्मता **अस्मिता** है। तीनों गुणों का स्वभाव प्राकट्य एवम् प्रकाश, क्रिया तथा स्थिति **अन्वय** है तथा इन्द्रियां भोग तथा मोक्ष के लिये हैं यही **अर्थवत्त्व अर्थात् प्रयोजन** है। इनमें संयम करने से **इन्द्रिय जय** होता है।

१५४. ततो मनोजवित्वं विकरणभावः प्रधानजयश्च ॥३।४८॥

पदार्थ :—(ततः) इन्द्रिय जय से (मनोजवित्वं) मन के समान शारीरिक गति (विकरण भावः) शरीर के बिना इन्द्रियों में विषयों को अनुभव करने की क्षमता (प्रधान जयः च) तथा प्रकृति पर अधिकार सम्पन्न होता है।

भावार्थ :—इन्द्रियों के जय से **मन के समान शारीरिक गति शरीर के बिना** किसी भी देश तथा काल के **इन्द्रिय गम्य विषयों को जान लेना** तथा प्रकृति पर अधिकार सम्पन्न होता है।

यह **मधु प्रतीक** नामक, विषयों को कठिनाई रहित सरलता से जान लेने वाली **सिद्धि** है।

१५५. सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वं च ॥३।४९॥

पदार्थ :—(सत्त्व पुरुष अन्यता ख्याति मात्रस्य) बुद्धि तथा पुरुष की भिन्नता का ज्ञान मात्र होने पर (सर्व भाव अधिष्ठातृत्वम्) समस्त भावों पर अधिकार (सर्व ज्ञातृत्वं च) तथा समस्त गुणों का ज्ञान हो जाता है।

भावार्थ :—बुद्धि तथा पुरुष की भिन्नता का ज्ञान मात्र रहने वाली सबीज समाधि सम्पन्न योगी का समस्त भावों अर्थात् **गुणों तथा उसके व्यवसाय पर अधिकार** तथा **समस्त गुणों को जान** लेने की क्षमता हो जाता है।

यह **विशोका** नामक स्थिति कही जाती है।

१५६. तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम् ॥३।५०॥

पदार्थ :—(तत् वैराग्यात् अपि) उसमें भी वैराग्य होने पर (दोष बीज क्षये) दोषों का बीज क्षीण होने से (कैवल्यम्) मोक्ष होता है।

भावार्थ :—सबीज समाधि से बुद्धि तथा पुरुष की भिन्नता का **ज्ञान** होने, समस्त भावों पर अधिकार होने तथा समस्त गुणों एवम् कालों का ज्ञान होने पर **इनमें भी वैराग्य** होने तथा **समस्त दोषों का बीज क्षीण** होने से कैवल्य अर्थात् मोक्ष होता है।

१५७. स्थान्युपनिमन्त्रणे सङ्गस्मयाकरणं पुनरनिष्टप्रसङ्गात् ॥३।५१॥

पदार्थ :—(स्थानि उपनिमन्त्रणे) योग की भूमिकाओं में स्थिर होने पर भी अन्यों के द्वारा आमन्त्रित किये जाने पर

(सङ्गस्मय अकरणम् पुनः अनिष्ट प्रसङ्गात्) सङ्ग होने पर अहङ्कार उत्पन्न होने से पुनः अनिष्ट होता है।

भावार्थ :—योग की भूमिकाओं में स्थिर होने पर भी **उत्तमोत्तम आमन्त्रण** मिलने से **सङ्ग से रागादि तथा अहङ्कार** उत्पन्न होने से पुनः अनिष्ट उत्पन्न होते हैं।

योग की भूमिकाओं के अनुसार चार प्रकार के योगी होते हैं।

अ—प्राथमकल्पिक :—जो अभ्यास करने में प्रवृत्त होते हैं।

आ—मधुभूमिक :—जिनकी बुद्धि योग में प्रवेश कर चुकी है अर्थात् ऋतम्भरा प्रज्ञा युक्त।

इ—प्रज्ञा ज्योति :—भूतेन्द्रिय जयी, जिसने भावित और भावनीय विषयों में रक्षा बन्ध कर लिया है।

ई—अतिक्रान्त भावनीय :—जिसका चित्त समस्त विषयों से विरक्त, रहकर समाधि जन्य मधुमती भूमिका में स्थिर रहता है। जिसने बुद्धि की सातों भूमिकाओं को प्राप्त कर लिया है।

१५८. क्षणतत्क्रमयोः संयमाद्विवेकजं ज्ञानम् ॥३।५२॥

पदार्थ :—(क्षण तत् क्रमयोः) क्षण और उसके क्रम में (संयमात् विवेकजं ज्ञानम्) संयम करने से विवेकज ज्ञान उत्पन्न होता है।

भावार्थ :—काल के सबसे छोटे अविभाज्य भाग का नाम **क्षण** है। क्षण के पश्चात् क्षण, का निरन्तर परिवर्तित होने वाला **क्रम** है। क्षण और उसके क्रम में संयम करने से **विवेकज ज्ञान** उत्पन्न होता है।

१५९. जातिलक्षणदेशैरन्यतानवच्छेदात् तुल्ययोस्ततः प्रतिपत्तिः ॥३।५३॥

पदार्थ :—(जाति लक्षण देशैः) जाति, लक्षण और देश से (अन्यता अनवच्छेदात्) भिन्नता के अनिश्चय से (तुल्ययोः) तुल्य प्रतीत होने वालों का (ततः) विवेकज ज्ञान से (प्रतिपत्तिः) निश्चय होता है।

भावार्थ :—जाति, लक्षण और देश से भिन्नता के अनिश्चय से **तुल्य प्रतीत होने वाले पदार्थों की भिन्नता** का विवेकज ज्ञान से निश्चय होता है।

१६०. तारकं सर्वविषयं सर्वथाविषयमक्रमम् चेति विवेकजं ज्ञानम् ॥३।५४॥

पदार्थ :—(तारकं) स्वयं स्फुरित ज्ञान (सर्व विषयं) जिससे समस्त विषयों का ज्ञान स्वतः हो जाता है, (सर्वथा अविषयम् अक्रमम् च इति) और जिससे क्रम की अपेक्षा से रहित सर्वथा अविदित विषय भी विदित हो जाते हैं (विवेकज ज्ञानम्) विवेकज ज्ञान है।

भावार्थ :—**स्वतः स्फुरित ज्ञान** जिससे समस्त विषयों का ज्ञान स्वतः ही हो जाता है, और जिससे **क्रम की अपेक्षा** से रहित सर्वथा **अविदित विषय** भी विदित हो जाते हैं। वह तारक संज्ञक **विवेकज ज्ञान** है।

१६१. सत्त्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यम् ॥३।५५॥

पदार्थ :—(सत्त्व पुरुषयोः) बुद्धि तथा पुरुष की (शुद्धि साम्ये) शुद्धि तथा साम्यावस्था (कैवल्यम्) कैवल्य अर्थात् मोक्ष है।

भावार्थ :—बुद्धि तथा पुरुष की **शुद्धि** तथा **साम्यावस्था** कैवल्य अर्थात् मोक्ष है।

॥ इति विभूति पादः ॥

कैवल्य पादः

१६२. जन्मौषधिमंत्रतपः समाधिजाः सिद्धयः ॥४।१॥

पदार्थ :—(जन्म औषधि मंत्र तपः समाधिजाः सिद्धयः) जन्मजा, औषधिजा, मंत्रजा, तपजा तथा समाधिजा सिद्धियां होती हैं।

भावार्थ :—पूर्व जन्म कृत साधना के संस्कार से जन्म से ही सिद्धि सम्पन्न उत्पन्न होना **जन्मजा सिद्धि** है। बल तथा वीर्यवर्धक औषधियों के सेवन से उत्पन्न सिद्धि **औषधिजा सिद्धि** है। मन्त्र के जप से उत्पन्न सिद्धि **मंत्रजा सिद्धि** है। प्राणायामादि तप के अनुष्ठान से उत्पन्न सिद्धि **तपजा सिद्धि** है। योग दर्शन के विभूतिपाद में वर्णित समाधि से उत्पन्न सिद्धियां **समाधिजा सिद्धि** है।

१६३. जात्यन्तरपरिणामः प्रकृत्यापूरात् ॥४।२॥

पदार्थ :—(जाति अन्तर परिणामः) जात्यन्तर परिणाम अर्थात् जाति परिवर्तन (प्रकृति आपूरात्) प्रकृति के आपूरित होने से होता है।

भावार्थ :—प्रकृति के आपूरित होने के कारण जाति परिवर्तन रूपी जात्यन्तर परिणाम होता है। सिद्धियों से सम्पन्न होने पर **शरीर इन्द्रियों** तथा **चित्त** में जो **सामर्थ्य संचार** होता है, वही **जात्यन्तर परिणाम** है।

१६४. निमित्तमप्रयोजकं प्रकृतिनां वरणभेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत् ॥४।३॥

पदार्थ :—(निमित्तम् अप्रयोजकम् प्रकृतीनाम्) धर्मादि-निमित्त प्रकृतियों का प्रयोजक नहीं है (वरण भेदः तु ततः क्षेत्रिकवत्) उससे तो किसान के समान आवरण अर्थात् रुकावट का छेदन किया जाता है।

भावार्थ :—पूर्व सूत्र में वर्णित मन्त्र, औषधि, तप तथा समाधि निमित्त मात्र हैं। प्रकृतियों के प्रयोजक नहीं हैं। वे **किसान के समान रुकावट दूर करने वाले** हैं। जन्म, औषधि, मन्त्र आदि नैमित्तिक कारण **विकासगत बाधाओं के हटाने हारे** हैं, न कि **प्रकृति को बदलने वाले**।

१६५. निर्माणचित्तान्यस्मितामात्रात् ॥४।४॥

पदार्थ :—(निर्माण चित्तानि) चित्तों का निर्माण करने वाली (अस्मिता मात्रात्) केवल मात्र अस्मिता है।

भावार्थ :—जन्म, औषधि, मन्त्र तथा तप आदि साधनों से चितों का निर्माण करने वाली केवल **मात्र अस्मिता** है।

१६६. प्रवृत्तिभेदे प्रयोजकं चित्तमेकमनेकेषाम् ॥४।५॥

पदार्थ :—(प्रवृत्ति भेदे) नाना प्रकार की प्रवृत्तियों के भेद में (प्रयोजकम्) प्रयोजक (चित्तम् एकम् अनेकेषाम्) चित्त एक है अनेकों चितों का।

भावार्थ :—एक चित ही प्रवृत्तियों के भेद से अनेकों (जन्म, औषधि, मन्त्र, तप और समाधि से उत्पन्न) चितों का प्रेरक होता है।

१६७. तत्र ध्यानजमनाशयम् ॥४।६॥

पदार्थ :—(तत्र ध्यानजम्) उत्पन्न हुये उन चित्तों में ध्यान जनित चित्त (अन आशयम्) कर्माशय से रहित होता है।

भावार्थ :—जन्म, औषधि, मन्त्र, तप और समाधि से उत्पन्न हुये उन चित्तों में ध्यान जनित (समाधि जन्य) चित्त कर्माशय से रहित उत्तम चित्त होता है।

चित्त की उत्तमता पाँच प्रकार की होती है।

जन्म से, औषधि सेवन से, मन्त्र जपानुष्ठान से, प्राणायामादिक तपानुष्ठान से तथा समाधि से।

इनमें **समाधिजन्यचित्त कर्माशय से रहित सर्वश्रेष्ठ** होता है।

१६८. कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम् ॥४।७॥

पदार्थ :—(कर्म अशुक्लं अकृष्णम् योगिनः) योगियों के कर्म अशुक्ल अर्थात् न पुण्य, अकृष्ण अर्थात् न पाप होते हैं (त्रिविधम् इतरेषाम्) अन्यों के कर्म शुक्ल अर्थात् पुण्य, कृष्ण अर्थात् पाप तथा पुण्य-पाप मिश्रित रूप से तीन प्रकार के होते हैं।

भावार्थ :—योगियों के कर्म पाप पुण्य रहित होते हैं। अन्यों के कर्म पुण्य, पाप तथा पुण्य-पाप मिश्रित रूप से तीन प्रकार के होते हैं।

१६९. ततस्तद्विपाकानुगुणानामेवाभिव्यक्तिर्वासनानाम् ॥४।८॥

पदार्थ :—(ततः) उन पाप, पुण्य तथा पाप-पुण्य मिश्रित कर्मों से (तत् विपाक अनुगुणानाम् एव) उनके फल स्वरूप ही (अभिव्यक्तिः वासनानाम्) वासनाओं की अभिव्यक्ति होती है।

भावार्थ :—उन पाप, पुण्य तथा पाप-पुण्य मिश्रित कर्मों के फलस्वरूप ही वासनायें उत्पन्न होती हैं।

१७०. जातिदेशकालव्यवहितानामप्यानन्तर्यं स्मृतिसंस्कारयोरेकरूपत्वात् ॥४।९॥

पदार्थ :—(जाति देश काल व्यवहितानाम् अपि) जाति, देश तथा काल का व्यवधान रहने पर भी (आनन्तर्यम्) कर्म के संस्कारों में व्यवधान नहीं होता है (स्मृति संस्कारयोः) स्मृति तथा संस्कारों की (एक रूपत्वात्) एक रूपता के कारण।

भावार्थ :—जाति, देश तथा काल का जन्मान्तर के कारण व्यवधान रहने पर भी स्मृति तथा संस्कारों की एक रूपता के कारण कर्म के संस्कारों में व्यवधान नहीं होता है।

१७१. तासामनादित्वं चाशिषो नित्यत्वात् ॥४।१०॥

पदार्थ :—(तासाम् अनादित्वं च) और उन वासनाओं की अनादिता है; (आशिषः नित्यत्वात्) आत्म कल्याण की इच्छाओं की नित्यता के कारण।

भावार्थ :—अपने कल्याण की इच्छाओं की नित्यता के कारण **वासनायें अनादि** हैं।

१७२. हेतुफलाश्रयालबनैः संगृहीतत्वादेषामभावे तदभावः ॥४।११॥

पदार्थ :—(हेतु फल आश्रय आलम्बनैः) हेतु, फल, आश्रय, आलम्बन (संगृहीतत्वात्) से संगृहीत वासनायें रहती हैं। (एषाम् अभावे तत् अभावः) इनके अभाव से वासनाओं का अभाव हो जाता है।

भावार्थ :—सुख, दुःख, राग, द्वेष, धर्म तथा अधर्म इनसे संसार चक्र प्रवर्तित है। संसार चक्र का मूल **अविद्या** है। **हेतुरूप** (अविद्या), **फलरूप** (संस्कार), **आश्रयरूप** (चित्त) तथा

आलम्बनरूप (शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध) के अभाव से वासनाओं का भी अभाव हो जाता है।

१७३. अतीतानागतं स्वरूपतोऽस्त्यध्वभेदाद्धर्माणाम् ॥४।१२॥

पदार्थ :—(अतीत अनागतं) गत और अनागत (स्वरूपतः अस्ति) स्वरूप से विद्यमान रहते हैं (अध्वभेदात् धर्माणाम्) काल से भेद होता है धर्मों का।

भावार्थ :—अतीत और अनागत स्वरूप से विद्यमान रहते हैं, धर्मों का काल से भेद होता है।

१७४. ते व्यक्तसूक्ष्मा गुणात्मानः ॥४।१३॥

पदार्थ :—(ते) वे धर्म (व्यक्त सूक्ष्मा) प्रकट तथा अप्रकट (गुणात्मानः) गुण रूप ही हैं।

भावार्थ :—धर्मी के आश्रय से रहने वाले ये व्यक्त और अव्यक्त धर्म अर्थात् वासनायें गुणरूप ही हैं।

१७५. परिणामैकत्वाद्वस्तुतत्त्वम् ॥४।१४॥

पदार्थ :—(परिणामैकत्वात्) परिणाम की एकता से (वस्तु तत्त्वम्) वस्तु को जाना जाता है।

भावार्थ :—परिणाम की एकता से वस्तु का ज्ञान होता है।

१७६. वस्तुसाम्ये चित्तभेदात्तयोर्विभक्तः पन्थाः ॥४।१५॥

पदार्थ :—(वस्तु साम्ये) वस्तु की समानता होने पर भी (चित्त भेदात्) चित्त की भिन्नता से (तयोः) धर्म और धर्मी का (विभक्तः पन्थाः) मार्ग भिन्न-भिन्न है।

भावार्थ :—वस्तु एक होने पर भी चित्त अर्थात् धर्मी के भेद के कारण वस्तु विषयक अनुभव के मार्ग भिन्न-भिन्न हैं।

१७७. न चैकचित्ततन्त्रं वस्तु तदप्रमाणकं तदा किं स्यात् ॥४।१६॥

पदार्थ :—(न च एक चित्त तन्त्रं वस्तु) और वस्तु एक चित्त के अधीन नहीं है (तद् अप्रमाणकं) उस वस्तु के चित्त का विषय न रहने पर (तदा किम् स्यात्) तब क्या होगा ?

भावार्थ :—वस्तु एक चित्त के अधीन विषय नहीं है। वस्तु के चित्त का विषय न रहने पर वस्तु का क्या होगा ?

१७८. तदुपरागापेक्षित्वाच्चित्तस्य वस्तु ज्ञाताज्ञातम् ॥४।१७॥

पदार्थ :—(तत् उपराग अपेक्षित्वात्) तब उपराग अर्थात् सामीप्य की अपेक्षा से (चित्तस्य वस्तु) चित्त के लिये वस्तु (ज्ञात अज्ञातम्) ज्ञात और अज्ञात रहेगी।

भावार्थ :—तब वस्तु से उपराग अर्थात् सामीप्य न होने पर वस्तु चित्त के लिये अज्ञात तथा उपराग अर्थात् सामीप्य होने पर ज्ञात होगी।

१७९. सदा ज्ञातश्चित्तवृत्तयस्तत्प्रभोः पुरुषस्यापरिणामित्वात् ॥४।१८॥

पदार्थ :—(सदा ज्ञाताः चित्त वृत्तयः तत् प्रभोः) चित्त के स्वामी पुरुष को चित्त की वृत्तियां सदा ज्ञात रहती हैं (पुरुषस्य अपरिणामित्वात्) पुरुष के अपरिणामी होने के कारण।

भावार्थ :—चित्त के स्वामी तथा अपरिणामी होने के कारण चित्त की वृत्तियां उसे सदा ज्ञात रहती हैं।

१८०. न तत्स्वाभासं दृश्यत्वात् ॥४।१९॥

पदार्थ :—(न तत् स्व आभासम्) चित्त प्रकाश स्वरूप नहीं है (दृश्यत्वात्) दृश्य होने के कारण।

भावार्थ :—दृश्य होने के कारण चित्त किसी वस्तु का **प्रकाशक** नहीं है। क्योंकि चित्त **प्रकाश स्वरूप** नहीं है।

१८१. एकसमये चोभयानवधारणम् ॥४।२०॥

पदार्थ :—(एक समये) एक समय में (च उभयान् अवधारणम्) चित्त तथा वस्तु दोनों का ज्ञान नहीं होता।

भावार्थ :—चित्त प्रकाश स्वरूप नहीं है। अतः उसे **एक-समय में स्वयं का तथा ज्ञेय वस्तु** का एक साथ ज्ञान नहीं होता है।

१८२. चित्तान्तरदृश्ये बुद्धिबुद्धेरतिप्रसङ्गः स्मृतिसङ्करश्च ॥४।२१॥

पदार्थ :—(चित्तान्तर दृश्ये) चित्त को अन्य चित्त का दृश्य मानने तथा (बुद्धि बुद्धेः) बुद्धि को अन्य बुद्धि का ज्ञाता मानने पर (अति प्रसङ्गः) अति प्रसङ्ग दोष होगा (स्मृति सङ्करः च) तथा स्मृतियों का मिश्रण हो जायगा।

भावार्थ :—चित्त को अन्य चित्त का दृश्य मानने तथा बुद्धि को अन्य बुद्धि का ज्ञाता मानने पर अति प्रसङ्ग दोष होगा तथा स्मृतियों का मिश्रण हो जायगा।

१८३. चितेरप्रतिसंक्रमायास्तदाकारापत्तौ स्वबुद्धिसंवेदनम् ॥४।२२

पदार्थ :—(चितेः अप्रति संक्रमायाः) चेतन के गमनागमन रहित होने से (तदाकारापत्तौ) बुद्धि के तदाकार होने पर (स्व बुद्धि संवेदनम्) उसे अपनी बुद्धि का ज्ञान होता है।

भावार्थ :—चेतन पुरुष के गमनागमन रहित होने से बुद्धि के साथ तदाकार होने पर उसे अपनी बुद्धि का ज्ञान होता है।

"अत" सातत्य गमने धातु के अनुसार तथा एक देशी एवम् अल्प होने के कारण आत्मा गमनागमन रहित नहीं है।

सर्वव्यापक होने के कारण केवल मात्र परमात्मा ही गमनागमन रहित है।

१८४. द्रष्टृदृश्योपरक्तं चित्तं सर्वार्थम् ॥४।२३॥

पदार्थ :—(द्रष्टृ दृश्य उपरक्तं) द्रष्टा और दृश्य में उपरक्त (चित्तं सर्वार्थम्) चित्त सब अर्थों वाला है।

भावार्थ :—द्रष्टा और दृश्य में अनुरक्त चित सब अर्थों वाला अर्थात् **चेतन और अचेतन** सब कुछ है।

१८५. तदसंख्येयवासनाभिश्चित्रमपि परार्थं संहत्यकारित्वात् ॥४।२४॥

पदार्थ :—(तत् असंख्येय वासनाभिः चित्रम् अपि) असंख्य वासनाओं से युक्त वह चित्त भी (परार्थं) परार्थ अर्थात् भोग के लिये ही है (संहत्य कारित्वात्) वासनाओं के संग्रह कर्त्ता होने के कारण।

भावार्थ :—वासनाओं के संग्रह कर्ता होने के कारण अनेक वासनाओं से युक्त यह चित्त **परार्थ** अर्थात् भोग के लिये ही है।

१८६. विशेषदर्शिन आत्मभाव भावना विनिवृत्तिः ॥४।२५॥

पदार्थ :—(विशेष दर्शिनः) विशेष दर्शी की (आत्म भाव भावना) आत्म भाव की भावना (विनिवृत्तिः) की निवृत्ति हो जाती है।

भावार्थ :—विशेषदर्शी अर्थात् समाधि द्वारा विवेकख्याति सम्पन्न योगी की **ऊहापोह युक्त आत्मभावना, मैं क्या हूँ** ? आदि निवृत हो जाती है।

१८७. तदा विवेकनिम्नम् कैवल्यप्राग्भारं चित्तम् ॥४।२६॥

पदार्थ : (तदा) उस समय (विवेकनिम्नम्) समाधिजन्य विवेक से विनम्र (कैवल्य प्राग्भारं चित्त) चित्त मोक्षाभिमुख संस्कारों से युक्त होता है।

भावार्थ :—उस समय चित्त समाधिजन्य **विवेक से विनम्र** तथा **मोक्षाभिमुख संस्कारों से युक्त** होता है।

१८८. तच्छिद्रेषु प्रत्ययान्तराणि संस्कारेभ्यः ॥४।२७॥

पदार्थ :—(तत् छिद्रेषु) उस समय समाधि से भिन्न अन्तराल की दशा में (प्रत्यय अन्तराणि) अन्य विषयों का ज्ञान (संस्कारेभ्यः) पूर्व संस्कारों से होता है।

भावार्थ :—समाधि से भिन्न अवस्था में योगी को अन्य विषयों का ज्ञान **पूर्व संस्कारों** से होता है।

१८९. हानमेषां क्लेशवदुक्तम् ॥४।२८।

पदार्थ :—(हानम् एषाम्) इन संस्कारों का नाश भी (क्लेशवत्) अविद्यादि क्लेशों के समान (उक्तम्) करने को कहा है।

भावार्थ :—अविद्यादि क्लेशों की भाँति इन संस्कारों का भी नाश करना चाहिये।

१९०. प्रसंख्यानेऽप्यकुसीदस्य सर्वथा विवेकख्याते-र्धर्ममेघः समाधिः ॥४।२९॥

पदार्थ :—(प्रसंख्याने अपि) पञ्च भूतों के विभावन में भी (अकुसीदस्य) फल की आशा से रहित, (सर्वथा विवेकख्यातेः) पूर्णतः विवेकख्याति वाले योगी को (धर्ममेघः समाधिः) धर्ममेघ समाधि सम्पन्न होती है।

भावार्थ :—पञ्च महाभूतों से उत्पन्न **सिद्धियों के विभावन में भी उपेक्षा करने वाले** तथा **फल की आशा से सर्वथा रहित** योगी को **धर्ममेघ समाधि** सम्पन्न होती है।

१९१. ततः क्लेशकर्मनिवृत्तिः ॥४।३०॥

पदार्थ :—(ततः) धर्ममेघ समाधि सम्पन्न होने से (क्लेश कर्म) अविद्यादि क्लेशों तथा कर्माशय से (निवृत्तिः) निवृत्ति हो जाती है।

भावार्थ :—विवेकख्यातिमय धर्ममेघ समाधि सम्पन्न होने से **अविद्यादि क्लेशों, कर्माशय एवम् त्रिविध कर्मों** से निवृत्ति हो जाती है।

१९२. तदा सर्वावरणमलापेतस्य ज्ञानस्यानन्त्याज्ज्ञेयमल्पम् ॥४।३१॥

पदार्थ :—(तदा) उस समय (सर्व आवरण मलापेतस्य) समस्त मल तथा आवरण रहित होने (ज्ञानस्य अनन्त्यात्) तथा ज्ञान की पराकाष्ठा होने के कारण योगी को (ज्ञेयम् अल्पम्) अल्प पदार्थ जानने योग्य रह जाते हैं।

भावार्थ :—उस समय **समस्त विक्षेप** तथा **आवरण रहित** होने तथा **प्राप्तव्य ज्ञान की पराकाष्ठा** होने के कारण योगी को **अल्प पदार्थ ही जानने योग्य** रह जाते हैं।

१९३. ततः कृतार्थानाम् परिणामक्रमसमाप्तिर्गुणानाम् ॥४।३२॥

पदार्थ :—(ततः) उससे (कृतार्थानाम्) कृतार्थों के लिये अर्थात् कैवल्य सिद्ध योगी के लिये (परिणाम क्रम समाप्तिः गुणानाम्) गुणों के परिणाम क्रम की समाप्ति हो जाती है।

भावार्थ :—उससे **कृतार्थों** (भोग तथा मोक्ष सिद्ध योगी) के लिये **गुणों के परिणाम क्रम की समाप्ति** हो जाती है।

१९४. क्षणप्रतियोगी परिणामापरान्तनिर्ग्राह्यः क्रमः ॥४।३३॥

पदार्थ :—(क्षण प्रतियोगी) क्षण का प्रतियोगी जो (परिणाम अपरान्त) परिणाम के अन्त में (निर्ग्राह्यः क्रमः) ग्रहण किया जाने वाला क्रम है।

भावार्थ :—क्षण के पश्चात् परिणाम के अन्त में ग्रहण किया जाने वाला क्रम है।

१९५. पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूप-प्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति ॥४।३४॥

पदार्थ :—(पुरुषार्थ शून्यानां) पुरुषार्थ की समाप्ति (गुणानां प्रतिप्रसवः) तथा गुणों की निष्क्रियता (कैवल्यं) कैवल्य है, (स्वरूप प्रतिष्ठा वा चिति शक्तिः इति) अथवा चेतन शक्ति का अपने स्वरूप में स्थित होना कैवल्य है।

भावार्थ :—**पुरुषार्थ की समाप्ति** तथा **गुणों की निष्क्रियता** कैवल्य है, अथवा **चेतन शक्ति का अपनेस्वरूप में स्थित** होना कैवल्य है।

॥ इति कैवल्य पादः ॥

इति श्री मद्भगवत्पूज्यपाद श्री मत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीमत् आत्मानन्द तीर्थ स्वामिना विरचिता "सुप्रभा" नाम्नी टीका सुभूषिता श्री मुनिवर पतञ्जलि प्रणीत योगदर्शनम् ॥

॥ ओ३म् ॥

योग दर्शनम्

सूत्र अनुक्रमणिका

सूत्र क्रम संख्या	सूत्र	पाद संख्या	सूत्र संख्या	पृष्ठ संख्या
	समाधि पादः			
१.	अथ योगानुशासनम्।	१	१	२३
२.	योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।	१	२	२३
३.	तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।	१	३	२३
४.	वृत्तिसारूप्यमितरत्र।	१	४	२३
५.	वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टाक्लिष्टाः।	१	५	२४
६.	प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः।	१	६	२४
७.	प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि।	१	७	२४
८.	विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम्।	१	८	२४
९.	शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः।	१	९	२५
१०.	अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा।	१	१०	२५
११.	अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः।	१	११	२५
१२.	अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः।	१	१२	२५
१३.	तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः।	१	१३	२५
१४.	स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः।	१	१४	२६
१५.	दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्।	१	१५	२६

॥ इति समाधि पादः ॥

साधन पादः

॥ इति साधन पादः ॥

विभूति पादः

सूत्र क्रम संख्या	सूत्र	पाद सं०	सूत्र सं०	पृ० सं०
१२४	संस्कारसाक्षात्करणात्पूर्वजातिज्ञानम् ।	३	१८	६४
१२५	प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम्	३	१९	६४
१२६	न च तत्सालम्बनं तस्याविषयीभूतत्वात् ।	३	२०	६४
१२७	कायरूपसंयमात्तद्ग्राह्यशक्तिस्तम्भे चक्षुःप्रकाशासम्प्रयोगेऽन्तर्धानम् ।	३	२१	६५
१२८	सोपक्रमं निरुपक्रमं च कर्म तत्संयमादपरान्तज्ञानमरिष्टेभ्यो वा ।	३	२२	६५
१२९	मैत्र्यादिषु बलानि ।	३	२३	६६
१३०	बलेषु हस्तिबलादीनि ।	३	२४	६६
१३१	प्रवृत्त्यालोकन्यासात्सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टज्ञानम् ।	३	२५	६७
१३२	भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् ।	३	२६	६७
१३३	चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम् ।	३	२७	६८
१३४	ध्रुवे तद्गतिज्ञानम् ।	३	२८	६८
१३५	नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम् ।	३	२९	६८
१३६	कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः ।	३	३०	६८
१३७	कूर्मनाड्यां स्थैर्यम् ।	३	३१	६९
१३८	मूर्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम् ।	३	३२	६९
१३९	प्रातिभाद्वा सर्वम् ।	३	३३	६९
१४०	हृदये चित्तसंवित् ।	३	३४	६९
१४१	सत्त्वपुरुषयोरत्यन्तासंकीर्णयोः प्रत्ययाविशेषो भोगः परार्थत्वात् स्वार्थसंयमात्पुरुषज्ञानम् ।	३	३५	६९

सूत्र क्रम संख्या	सूत्र	पाद सं०	सूत्र सं०	पृ० सं०
१४२	ततः प्रातिभश्रावणवेदनादर्शास्वादवार्ता जायन्ते ।	३	३६	७०
१४३	ते समाधावुपसर्गाव्युत्थाने सिद्धयः ।	३	३७	७०
१४४	बन्धकारणशैथिल्यात्प्रचारसंवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः ।	३	३८	७१
१४५	उदानजयाज्जलपङ्ककण्टकादिष्वसङ्ग उत्क्रान्तिश्च ।	३	३९	७१
१४६	समानजयाज्ज्वलनम् ।	३	४०	७३
१४७	श्रोत्राकाशयोः संबन्धसंयमाद्दिव्यं श्रोत्रम् ।	३	४१	७३
१४८	कायाकाशयोः संबन्धसंयमाल्लघुतूलसमापत्तेश्चाकाशगमनम् ।	३	४२	७४
१४९	बहिरकल्पिता वृत्तिर्महाविदेहा ततः प्रकाशावरणक्षयः ।	३	४३	७४
१५०	स्थूलस्वरूपसूक्ष्मान्वयार्थवत्त्वसंयमाद्भूतजयः ।	३	४४	७४
१५१	ततोऽणिमादिप्रादुर्भावः कायसंपत्तद्धर्मानभिघातश्च ।	३	४५	७५
१५२	रूपलावण्यबलवज्रसंहननत्वानि कायसम्पत् ।	३	४६	७५
१५३	ग्रहणस्वरूपास्मितान्वयार्थवत्त्वसंयमादिन्द्रियजयः	३	४७	७६
१५४	ततो मनोजवित्वं विकरणभावः प्रधानजयश्च ।	३	४८	७६
१५५	सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वं च ।	३	४९	७७
१५६	तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम् ।	३	५०	७७

॥ इति विभूति पादः ॥

कैवल्य पादः

॥ इति कैवल्य पादः ॥

—:०:—

॥ इति योगदर्शन सूत्रस्य अनुक्रमणिका ॥